॥ हरि:ॐ ॥

मौनमंदिर में प्रभु

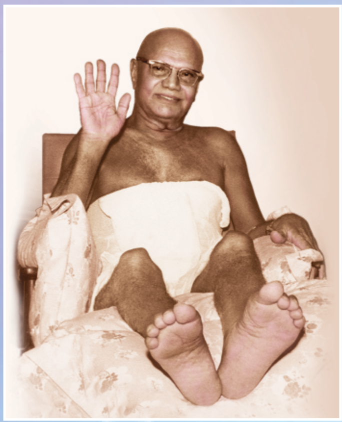

पूज्य श्रीमोटा

हरि:ॐ आश्रम प्रकाशन, सुरत

॥ हरि:ॐ ॥

मौनमंदिर में प्रभु

पूज्य श्रीमोटा की पावन-वाणी
मौन-एकांत के साधकों के समक्ष

: संकलन :
डॉ. रमेश म. भट्ट

: अनुवादक :
रजनीभाई बर्मावाला

हरि:ॐ आश्रम प्रकाशन, सुरत

❑ **प्रकाशक :**
हरि:ॐ आश्रम, कुरुक्षेत्र, जहाँगीरपुरा,
सुरत–३९५००५, दूरभाष : (०२६१) २७६५५६४, २७७१०४६
Email : hariommota1@gmail.com
Website : www.hariommota.org

© सर्वाधिकार – प्रकाशकाधीन

❑ प्रथम संस्करण : अेप्रिल ८, २०१४ (रामनवमी)

❑ प्रतियाँ : १०००

❑ पृष्ठ संख्या : ९८

❑ मूल्य : रु. २०/–

❑ प्राप्तिस्थान :
(१) **हरि:ॐ आश्रम,** सुरत–३९५००५

(२) **हरि:ॐ आश्रम,** नडियाद–३८७००१

❑ डिझाइनर : मयूर जानी, मो. ९४२८४०४४४३

❑ टाइपसेटिंग : अर्थ कॉम्प्यूटर
२०३, मौर्य कोम्प्लेक्ष, सी.यु.शाह कॉलेज के सामने,
इन्कमटैक्स, अहमदावाद–३८००१४,
फोन : (०७९) २७५४३६९९ , मो. ९३२७०३६४१४

❑ मुद्रक :
साहित्य मुद्रणालय प्रा. लि.
सिटी मिल कम्पाउन्ड, कांकरिया रोड, अहमदावाद–३८००२२
फोन: (०७९) २५४६९१०१

॥ हरि:ॐ ॥

निवेदन

पू. श्रीमोटा हरि:ॐ आश्रम, सुरत में मौनार्थिओं समक्ष अपनी पावन वाणी द्वारा मौनएकांत की पद्धति के बारे में और जीवनविकास के प्रति किस तरह सावधान रह सकें उसके बारे में बोध देते थे । उस पावन वाणी को संग्रहीत स्व. श्री चूनीभाई तमाकुवाला और स्व. श्री चंपकभाई भूतवाला ने की थी । पू. श्रीमोटा उसे पढ़ लेते थे । इससे उसे अधिकृत मान सकते हैं।

पू. श्रीमोटा की इस पावन वाणी की हस्तलिखित नोंध की नोट-बुक सुरत आश्रम के मौनमंदिरों में रखी गई थी, जिसके पठन से किसी साधक को प्रेरणा मिल सके ।

कुछ साधकों की विनती से उस पावन-वाणी का संकलन स्व. डॉ. रमेशभाई भट्ट (Ph.D.) ने पाँच पुस्तकों में किया है। उनमें से इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद हमारे ट्रस्टीमंडल के एक ट्रस्टी श्री रजनीभाई बर्मावाला ने किया है ।

इस पुस्तक का चतुरंगी मुखपृष्ठ तथा मुद्रणकार्य श्री श्रेयसभाई पंड्या, मे. साहित्य मुद्रणालय (प्रा.) लि., अहमदाबाद द्वारा पू. श्रीमोटा के प्रति अपने प्रेमभक्तिभाव से किया है, उनका आभार मानने के लिए हमारे पास कोई शब्द नहीं हैं ।

इस पुस्तक के पठन से साधकजन यथोचित लाभ उठाएँगे ऐसी शुभेच्छा हम व्यक्त करते हैं ।

रामनवमी, वि.सं. २०७० **ट्रस्टीमंडल**
दि. ८-४-२०१४ हरि:ॐ आश्रम, सुरत

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
	निवेदन	३
	मौनमंदिर में प्रभुप्रागट्य	५
१.	प्रपंचकाल का दुर्लभ साधन	११
२.	प्रभु का प्रागट्य	१९
३.	शब्द विषयक वैज्ञानिक विवेचन	२७
४.	निवेदन से खुलापन	३४
५.	संस्कार की शक्ति	३९
६.	भावात्मक शून्यता और साकार शब्द	४३
७.	करने जैसा एकमात्र काम	५२
८.	भ्रम तोड़ो-भेद कम करो	५८
९.	श्रीहरि भक्त का सभी हरे	६४
१०.	प्रभुभाव का रहस्य	६९
११.	चेतन का अनुभव	७५
१२.	भगवान के काम से भगवान राजी	८३
१३.	देशभक्ति	८९
	सूचि	९४

॥ हरि:ॐ ॥

मौनमंदिर में प्रभुप्रागट्य

पूज्य श्रीमोटा ने १९३९ में प्रभुपद प्राप्त किया । ग्यारह वर्ष के बाद हरि:ॐ आश्रम की स्थापना की और मौनएकांत द्वारा जीवात्मा के आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए सुविधा का आरंभ किया। हरि:ॐ आश्रम का अस्तित्व और उसकी प्रवृत्तियों का हेतु जीवात्मा के जीवन का विकास है । 'जीवनविकास' यानी हम जो प्राकृतिक जीवन जीते हैं, उसका ज्ञानपूर्वक उपयोग करके, मतलब, चेतन का लक्ष्य और धारणा रखकर हृदय में प्रभु का प्रागट्य करना । जो कोई जीव अपने जीवन में सुख, शांति, आनंद आदि का अनुभव करना चाहता हो, उसे हरि:ॐ आश्रम में नामस्मरण के साधन द्वारा मौनएकांत की सुविधा दी जाती है । ऐसे मौनएकांत के कक्ष को ''मौनमंदिर' के नाम से पहचाना जाता है ।

इस मौनमंदिर में कौन से प्रभु के भजन करें ? उसमें कौन से देव हैं ? ऐसा प्रश्न ''मौनमंदिर'' शब्द प्रथम बार सुननेवाले को हो, यह स्वाभाविक है । पू. श्रीमोटा को ही 'भगवान' स्वरूप माननेवाले का एक बड़ा समूह है । आपश्री के शरीर की उपस्थिति दरमियान जब कोई उन्हें 'भगवान 'प्रभु' रूप से उद्‌बोधन करते तो आपश्री वास्तविक हकीकत की स्पष्टता करते और कहते कि चेतननिष्ठ को जब तक शरीर है, तब तक वह 'चेतन' या भगवान नहीं है । शरीर होने से उसे भी थोड़ा-बहुत निमित्त का प्रारब्ध होता है । फिर, बिना निमित्त कुछ भी नहीं कर सकना । यह हकीकत बोलने में सरल है, किन्तु

उसकी क्रिया और अनुभूति की दृष्टि से यह बहुत ही गूढ़ और सूक्ष्म है । किन्तु इतना तो बिलकुल सच है कि आपश्री के हृदय में प्रभु प्रगट थे । आपश्री ने उस प्रभु के व्यक्त रूप को 'प्रेमरूप चेतना' के नाम से भी पहचान दी है। मौनमंदिर में पू. श्रीमोटा का चित्र रखते हैं । किन्तु उसमें प्रवेश करनेवाले और रहनेवाले जीव पू. श्रीमोटा को 'प्रभु' मानकर उपासना करें ऐसा कोई आग्रह नहीं रखते यह मौनमंदिर की विशेषता है । फिर भी पू. श्रीमोटा की अमूर्त, सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं अत्यंत सक्रिय प्रेमचेतना इन मौनमंदिरों में है । इसे केवल अनुभव प्रमाण से ही स्वीकार कर सकते हैं । यह चेतना हरि:ॐ आश्रमों के मौनमंदिरों में रहनेवाले जीवात्माओं के आत्मस्वरूप के साथ जुड़ी रहती है । मौनमंदिर में रहनेवाले जीव के साथ **यह** संयोग, संकलन और सक्रियता गूढ़ आध्यात्मिक विज्ञान का अत्यंत आकर्षक और अनुभवगम्य विषय है ।

इससे हम यह स्वीकार करें कि मौनमंदिर केवल चार दीवारवाला एकांत और अंधकार की सुविधा देनेवाला केवल कक्ष नहीं है । किन्तु पू.श्रीमोटा की प्रगट चेतना का जीवात्मा के अप्रगट चेतन के साथ सूक्ष्म संयोग का लीलास्थान है । मौनमंदिर में अंधेरा और एकांत होने से हमारी इन्द्रियों की बहिर्मुखता में अवरोध होता है । फलत: प्रकृति की व्यर्थ जाती शक्ति रुकती है । इससे अनायास ही पू. श्रीमोटा की प्रगट चेतना को सक्रिय होने के लिए भूमिका प्रदान होती है । और एक ऐसी सूक्ष्म भेदकरेखा अंकित होती है कि जीवात्मा पहले जिससे बिलकुल अनजान थी । ऐसे स्वयं में प्रकृति के आवरणों को हल होते हुए देखता है । इसके साथ-साथ वह

भगवान के नाम का उच्चारण भी मौनमंदिर में किया करता है। ये दोनों प्रक्रिया जीवात्मा के बिना प्रयत्न ही आरंभ होती हैं। यह एक बहुत ही बड़ी घटना है । किन्तु जीव के दिल में इस क्रिया की पूर्ण सभानतायुक्त महत्ता का स्वीकार न हुआ हो तो आरंभ में वह अकुलाता है या घबड़ाता है फिर भी मौनमंदिर में रही हुई पू.श्रीमोटा की प्रेमरूप चेतना उसका रक्षण करती है, उसमें शक्ति प्रेरित करती है ।

भगवान के नामस्मरण के साथ ही मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् के विविध रूप दीखते हैं । उसे देखनेवाला कौन है ? दीखता है वह किसका रूप है ? ये दोनों प्रश्न महत्त्व के हैं । **दीखता है वह जीवात्मा का प्राकृतिक रूप हैं । उसे 'देखता' है, वह 'स्वरूप' है । देखनेवाला वह 'द्दष्टा' रूप से है । इस प्रक्रिया में 'स्वयं' स्वयं को देखता है । भगवान के नामस्मरण के कारण वह जो 'देखता' है, उसमें संलग्न नहीं होता, रुचि नहीं लेता ।** फिर भी पश्चात्ताप और क्षमायाचना का तीव्र अनुभव होता है और जीवात्मा के हृदय के रुदन द्वारा शोधन होता है । प्रकृति के ऐसे प्रचंड आवेग एवं चित्त के संस्कार के वे चित्र बिना भोगे चले जाते हैं । इससे मौनमंदिर में बहुत बार बहुत लम्बे समय तक निरालंब आनंद का अनुभव हुआ करता है । ऐसे मौनमंदिर में हमारा प्राकृतिक रूप और हमारा वास्तविक आत्मरूप अलग होता है। इसलिए मौनमंदिर में रहनेवाले जीवात्मा को 'प्रभु' रूप से उद्‌बोधन करते हैं ।

पू. श्रीमोटा स्वजनों को 'प्रभु' रूप से उद्‌बोधित करते, यह बहुत ही यथार्थ था । आपश्री सब में रहे 'प्रभु' को देखते

थे। स्वयं 'प्रभु' रूप में प्रगट हुए होने से ही वे सभी में 'प्रभु' को देखते । यहाँ 'देखते' ऐसा कहे तब 'चर्मचक्षु से देखते ऐसा अर्थ ग्रहण न करें । उन्हें तो हमारे अंदर बैठे हुए प्रभु के साथ ही एकरूप होकर रहना होता है, किन्तु हमारा अंतःकरण उस एकरूपता का स्वीकार करे ऐसा नहीं होता । इसलिए आपश्री बारबार कहते कि

'हमें तो तुम्हारे दिल में प्रवेश कर कर्म करना है
किन्तु सभी द्वार पर बारह मन के ताले हैं

मौनमंदिरों में ऐसा अधिक विरोध नहीं होता । इसलिए उनका हमारी (निगूढ़) चेतना के साथ जुड़ने का योग संभव होता है । इसलिए मौनमंदिर में प्रकृति से अलग रहते और उसके लिए यत्नवान जीवात्मा के शुद्ध चेतनरूप को आपश्री 'प्रभु' रूप से देखते और उद्‌बोधित करते और **आज भी मौनमंदिर में रहने वाले जीवात्मा को कुछ भी चीज-वस्तु देते 'प्रभु' कहकर पुकारने का रिवाज है । भोजन का थाल सब से पहले मौनमंदिर के इस प्रभु को समर्पण करते हैं । इसके बाद ही आश्रमवासी भोजन पाते हैं** । पू. श्रीमोटा ने मौनमंदिर में रहने वाले जीवात्मा की सेवा का बहुत अधिक मूल्यांकन किया है।

मौनएकांत का आरंभ अहमदाबाद साबरमती आश्रम के गांधी आश्रम की 'मीरांकुटीर' में किया था । **पू. श्रीमोटा स्वयं वे मौनार्थिओं का मल उठाते थे । ऐसे ही मौनमंदिर में रहने वाले जीवात्मा के अनेक प्रकार के मलविक्षेप का निवारण पू. श्रीमोटा की प्रेमरूपी चेतना द्वारा होता ही है। यह इससे भी अधिक सूक्ष्म हकीकत है** । मौनमंदिर में रहा हुआ

जीवात्मा और संग्राम द्वारा नामस्मरण, भजन, कीर्तन, ध्यानादि साधन द्वारा स्वयं में छिपे हुए प्रभुरूप को प्रगट होने देता है। उसकी आवश्यक सेवा यह सच्ची सेवा है । इस अर्थ में यह सच्ची 'प्रभुसेवा' है। हमारे देश की आध्यात्मिक संस्कृति को जीतीजागती करने का और रखने का एक केन्द्र हरि:ॐ आश्रमों के मौनमंदिरों को गिन सकते हैं ।

इस पुस्तक में 'ॐकार' ध्वनि का असर का पृथक्करण, सूक्ष्म चक्रों के भेदन की क्रिया का संकेत, काल संक्षेप करने के लिए तंत्रसाधना की पद्धति का उल्लेख पू. श्रीमोटा के शब्दों में प्रथम बार ही पढ़ने (सुनने) को मिलता है ।

पू.श्रीमोटा की अनुभववाणी का इस श्रेणी में हुआ संकलन अनेक 'जीवों' को प्रेरणादायी हुआ है । इसलिए ये प्रकाशन बहुत फलदायी हुए हैं । इन प्रवचनों का संकलन करते हुए जो आह्लाद संपादन किया है, यह मेरे दिल की बड़ी पूँजी है । ऐसा उत्तम निमित्त प्रदान करने के लिए हरि:ॐ आश्रम, सुरत के ट्रस्टीमंडल का बहुत ही आभारी हूँ ।

पू.श्रीमोटा की आध्यात्मिक बातों का गहरा परिशीलन और अनुशीलन हुआ करे ऐसी भावना के साथ पूज्यश्री के चरणों में यह निवेदन समर्पित करता हूँ ।

रमेश म. भट्ट

'संतस्मृति'

३१, स्टेट बैंक ऑफ इन्डिया ओफिसर्स सोसायटी,

नारायणनगर, पालडी, अहमदाबाद – ३८०००७

✤ ✤ ✤

‘मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ !’

– मोटा

॥ हरिः ॐ ॥

१. प्रपंचकाल का दुर्लभ साधन

कालबल

इस समय में हमारी बुद्धि बहुत विकसित हुई है और उसका उपयोग भी अधिक हो ऐसा यह समय है । किन्तु वह किस दिशा के प्रति बढ़ी है यह प्रश्न है । जीवन के विकास के प्रति बुद्धि विकसित नहीं हुई है । किन्तु समयधर्म अनुसार मनुष्य की बुद्धि की गति हो । समय यह बड़ा कारण है । इसलिए समय के अनुसार बुद्धि की गति हो । समय बलवान है । समय के पास मनुष्य लाचार है । समय की गति बहुत प्रबल है । अर्जुन भीष्म, कर्ण और द्रोण जैसे महारथिओं के साथ अपने बल से टूट पड़ा । किन्तु कृष्ण का मित्र ऐसा अर्जुन समय पलटते 'काबे अर्जुन लूंटियो, यही धनुष्य, यही बाण' ऐसा अर्जुन, जो वीर नर था और परम पुरुष था, वह लूंटा गया और स्त्रिओं का रक्षा भी न कर पाया । ऐसी स्थिति काल को आभारी होती है ।

मुसीबतों का अंत

यह काल प्रपंचकाल है और इस में बुद्धि विकृत हो गई है । उसमें भावना का स्मरण करना, उसमें विश्वास प्रगट होना बहुत कठिन है । इस संसार में और जीवन में विघ्न आते हैं, इससे हमारे में अगर भगवान के ऊपर श्रद्धा, विश्वास प्रगट हो जाय तो सभी मुसीबतों का कुछ हल आ सकेगा । निश्चिंत हो सके । इससे बुद्धि की सहायता द्वारा भगवान के सहारे से उसमें से हल निकाल सकें, बुद्धि द्वारा हल करने का प्रयत्न करें।

इसके साथ भगवान में भरोसा बैठ गया हो तो आज नहीं तो कल हल निकलेगा । Every problem has its end—प्रत्येक समस्या का अंत है। एक चेतन ही ऐसा है कि जिसका अंत नहीं है । बाकी सब का अंत है । चेतन अनादि अनंत है; तो फिर कठिनाई, समस्या, मुश्किल आये, उसका अंत है। उससे उत्साह टूट जाता है फिर भी उसका अंत आने वाला है । किन्तु उससे दुःखी हो जाँय, क्लेश पाये, बेचैनी अनुभव करें तो ऐसा करके उसका समय हम स्वयं लंबा करते हैं । इसलिए अगर निश्चिंत रहें और हरएक का अंत है, ऐसा समझ में आ जाय—इसका अर्थ ऐसा नहीं कि बैठे रहना; प्रयत्न न करना; किन्तु मन में क्लेश या अशांति न हो, यह विशेष देखें। घबराना नहीं । ऐसा करके ऐसी भूमिका को संक्षिप्त कर सकते हैं ।

बुद्धि का प्रकाश कब ?

बुद्धि यह चेतन के नजदीक से नजदीक का अंग है । **भगवान के स्वरूप के लक्षण ज्ञान और प्रकाश हैं ।** बुद्धि संसार के अनेक प्रकार के संबंधों में समझ प्रेरित करती है । यह बुद्धि कभी सूर्य के प्रकाश जैसी समझ प्रगट नहीं करती, उसका कारण बुद्धि कर्म और प्रकृति से आवृत्त हो जाती है। हमारी बुद्धि अनेक प्रकार की कामना, आशा, लोलुपता से प्रेरित रहा करती है यानी कि बुद्धि सात्त्विक नहीं है । उसमें समता, तटस्थता नहीं है, इसलिए समस्या का हल करने में बुद्धि सफल नहीं होती। बाकी बुद्धि का स्वरूप तो ज्ञान-प्रकाश है । अगर बुद्धि में समता हो तो हरएक का हल दे सके । इसलिए जब तक वह अनेक प्रकार के रागद्वेष से प्रेरित रहती है, तब तक वह हमें स्पष्ट हल नहीं देती ।

बुद्धि में समत्व कब ?

ऐसा करने बुद्धि विशुद्ध करनी चाहिये । यह कैसे हो ? तो कहते, भाई, अनासक्त, निर्मम, निर्मोही हो, तब समता और समत्व प्रगट हो । तब ऐसा कब, किस तरह हो ।

ऐसे कुछ उदाहरण हैं कि भगवान जिसे संभालते हैं, उसका काम निबटता है । इसलिए इसे संसारव्यवहार में भगवान के सहारा की बहुत आवश्यकता है । संसार में पैसेदार मित्रों का सहारा हो तो वह भी आवश्यक समय पर नहीं मिलता । किन्तु एक भगवान ही ऐसे हैं कि जिनका सहारा सही समय पर काम आता है । भगवान गति में होते हुए भी गति में नहीं है । इसलिए संसार में मिले कर्म में चिपक के रहना है । मिला हुआ कर्म उत्तम से उत्तम होने के लिए बुद्धि की आवश्यकता और उसके लिए अगर बुद्धि में समता हो तो वह सही समय पर काम आये और इसके लिए ही अनासक्ति, निर्मोहता, निर्ममत्वपन आदि विकसित करें । वह शुद्ध हो इससे मन, प्राण, अहम् भी शुद्ध होंगे । इसके कारण हमारे में सब विशुद्ध होता है, और जीवन में एक ऐसी शक्ति प्रगट होती है कि जो सामान्यतः अनुभव नहीं कर सकते । इससे भगवान ने कहा है कि **सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणम् व्रज (गीता १८/६६)**—सब धर्म यानी जीवन के एकएक क्षेत्र के धर्म छोड़कर मेरे शरण में आ। तो वे कौन से धर्म ? हिन्दु, मुस्लिम, ईसाई, जैन आदि धर्म हैं वे ? नहीं । तो कौन से धर्म ? धर्म यानी फर्ज़ भी हो । तो गीतामाता फर्ज़ छोड़ने की अर्जुन को स्पष्ट मनाई करती है। तेरा प्राप्त धर्म युद्ध करने का है, इसलिए गीतामाता अर्जुन को

प्रेरित करती है । तो धर्म का अर्थ क्या ? यहाँ धर्म का अर्थ प्रकृति का धर्म यानी मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् का धर्म। मन का धर्म संकल्प-विकल्प करने का; प्राण का धर्म आशा, इच्छा, कामना, लोलुपता आदि; बुद्धि का धर्म तर्क, कुतर्क, शंका-कुशंका करने का; चित्त का धर्म संस्कार ग्रहण करने का; अहम् का धर्म मैं सब करता हूँ, मेरी समझ से होता है ये भाव । इससे ये सब प्राकृतिक functions (कार्य) धर्म छोड़ने की बात है । ये सब छोड़ें तो क्या होगा ? बुद्धि सात्त्विक होगी । भगवान कहते हैं कि 'तू तेरे मन को मेरे में पिरो दे' ! ऐसा करें तो क्या होगा ? हमारे करण (मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम्)-दैवी हो जाय, शुद्ध हो जाय । हम प्रत्येक कर्म करते बंधते हैं और ऐसे करते हुए अनेक कर्मों में बंधते हैं । इससे उन सब से छूटना हो तो प्राकृतिक धर्म को सभी ओर से छोड़कर तेरे मन को मेरे चरणकमल में लगा दे । मेरे चरणकमल में तू आसक्त हो जा तो सभी करण अपनेआप बदल जाएँगे और मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, अहम् आदि में दैवी गुण प्रगट होंगे । ऐसा होगा तो कर्म में मोह, लोभ नहीं होगा, इससे ऐसे समय में कर्म कैसे भी हो फिर भी भगवान में उसे लगन लग गई हो तो वह जो कर्म करेगा वे सात्त्विक प्रकार के होंगे; और ऐसे करते हुए तू जो जीव के संबंध में आएगा उसमें भी सद्भावना प्रेरित करेगा और ऐसा करके जगत की और मानव की उत्तम प्रकार की सेवा कर सकेगा।

प्रभु की गुप्त मदद :

दुनिया की सहायता या संसारी प्रकार की मदद कभी कम पड़ती है, उससे खमीर नहीं प्रगट होता, किन्तु भगवान में श्रद्धा,

विश्वास जीवंत हो जाय, तब हमें ऐसा हो कि हमारे पास-साथ कोई है, जिसके द्वारा प्रेरणा, उत्साह, बल मिलते रहते हैं; उद्यम, उत्साह प्रगट होते हैं, इससे न मान सकें ऐसी गुप्त मदद मिला करती है कि जिसकी किसीको समझ नहीं आती ।

प्रभुश्रद्धा के लिए स्मरण

तो भगवान पर विश्वास प्रगट करने के लिए कोई सरल साधन हो तो भगवान का स्मरण है । उससे वह हमारा सहायक होता है । भगवान की समर्थता की तुलना में इस दुनिया की कोई सहायता काम नहीं देती । उसकी सहायता से तो इस प्रकार की खुमारी, मस्ती प्रगट होती है कि फिर किसी प्रकार की चिंता नहीं रहती है ।

भक्ति का परिणाम

संसार में सुखी होने के लिए भगवान की भक्ति है। भक्ति तो ज्ञानात्मक है । भक्ति मूर्खता पैदा नहीं करती । भक्ति करनेवाला बुद्धू होता है ऐसी मान्यता भूलभरी है । उससे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् शुद्ध होते हैं । इससे उसके द्वारा बुद्धू नहीं बनता । किन्तु बुद्धि प्रकाश प्रेरित करती है । संसार में कुशल व्यवहारू से भी भक्त विशेष व्यवहारू बन सकता है और जिस क्षेत्र में उसे दाखिल होना पड़े, उसका विशेष ज्ञान उसे होता है। इससे भक्ति करने से करण जड़ हो जाते हैं——बुद्धू बनते हैं, यह मान्यता अज्ञानमूलक है । ऐसी बुद्धि से अपनेआप कर्म करने में उत्साह प्रगट होता है । वह समतायुक्त होने से कर्म को हल करने में दलीलें नहीं करनी पड़तीं । अपनेआप उसे सब समझ आती है और कर्म का केन्द्र पकड़ा

जाता है । भक्ति से ज्ञान और कर्म प्रगट होते हैं । यह तो त्रिवेणीसंगम होता है। कईओं की प्रकृति और स्वभाव भक्ति को; कइओं को भक्ति और ज्ञान को; और कइओं का भक्ति, ज्ञान और कर्म को अनुकूल होते हैं । इससे तीन रीति से वह संलग्न है । भक्त, ज्ञानी और कर्म करने वाला होता है ।

अनुभव करके देखो

भाई, भगवान का स्मरण करो तो उससे श्रद्धा प्रगट होती है। भगवान की सहायता का अनुभव तो करके देखो । हम संसार में बहुत गरीब हों, किन्तु हमारा कोई मित्र बहुत धनवान हो; किन्तु सुदामा की तरह हमारे में भक्ति हो, किन्तु माँगने जाने का दिल न हो, किन्तु आवश्यकता हो तो प्रभु हमें मदद किये बिना नहीं रहता, उसका यदि आसरा हो तो ! ऐसे प्रसंगों का मुझे अनुभव है । गांधीजी की रचनात्मक सेवा में था, तब मानद् वेतन लेता ! आठ जीव का पोषण करना था और उससे पूरा न होता था । तब मेरे मित्र मुझे मदद किया करते । उपरांत १ वर्ष में १ मास के लिए तो एकांत में जाता, तब मित्र मदद करते । इससे संसार में ऐसे मित्र यदि हों तो एक प्रकार का आश्रय रहे और टट्टारी रहती है, तो यदि भगवान की ऐसी मदद और आश्रय हो तो कैसी टट्टारी प्रगट होती है । यह सोचो ।

चेतननिष्ठ में राग का परिणाम

भगवान का आसरा इस समय में बिना वैराग्य प्रगट होना मुश्किल है; इस समय में वैराग्य प्रगट होना सरल नहीं है । किन्तु अभ्यास अगर प्रगट हो तो वैराग्य आता है, यह मेरा अनुभव है । अनेक जन्मों के पुण्यकर्मों का उदयकाल हो तो

वैराग्य प्रगट हो जाता है । प्रह्लाद-ध्रुव को प्रगट हुआ था । किन्तु मेरे-आपके जैसे को नहीं होता । इससे हमें तो अभ्यास ही करना रहता है; और उसके लिए भगवान का स्मरण वही एक सुलभ वस्तु है । अनुभवी लोग कहते हैं कि 'क्यों योग के पीछे पड़ते हो ? केवल स्मरण ही उत्तम प्रकार का फल देने या परिणाम देने श्रेष्ठ है ।' गीता में कहते हैं कि मेरे में तेरा मन पिरो दे। फिर तू देख कि क्या परिणाम आता है । फिर तुझे, कुछ देखना नहीं है । फिर मैं तुम्हारा सब किया करूँगा । माँ बालक का मल भी धो डालती है । वैसे यदि बालक जैसे हो जाएँगे तो भगवान उसे पवित्र भी बनाते, उसका सब धो भी डालें । इस तरह यदि कोई चेतन में स्थित आत्मा हो, उसमें यदि राग कर दें तो वह भी हमें पवित्र करता है। किन्तु वह कब ? जब उनके साथ दिल मिलाकर एक हो जाँय, ऐसी भक्ति हो जाय तो वह समर्थ बना दे । ऐसे महात्मा आज भी जीवित हैं ।

स्मरण का प्रताप

अनेक यहाँ आते हैं, उनकी ऐसी मनोवृत्ति जागी नहीं है। यहाँ प्रश्न पूछते हैं, किन्तु बाहर जाकर दूसरा ही करते हैं । मन में एक बात और करना अलग यह नहीं चलता । जहाँ से उच्च प्रकार का लाभ पाना हो, उसके पास आकर दंभ नहीं करना। इससे पतन होगा । भगवान का स्मरण जीवन में प्रत्यक्ष परिणाम ला सके ऐसा समर्थ साधन है । प्रभुकृपा से मेरे में बुद्धि थी। उसकी मदद द्वारा मैंने भगवान का स्मरण करके उसकी दया से अनेक अनुभव किये हैं । और मदद मिलती है - यह स्वानुभव है । भगवान का स्मरण प्रमाद नहीं बनने देता । इसके द्वारा

हमारे में भगवान के गुण प्रगट होते हैं । तदुपरांत अलगपना विकसित करने के लिए भी वह सर्वोत्तम साधन है । अगर कर्म करते-करते यदि प्रसन्नता विकसित नहीं कर सको तो तुम थक जाओगे, ज्ञानतंतु कमजोर हो जायेंगे । किन्तु भगवान का स्मरण आपको और ज्ञानतंतु को मजबूत बनाएगा; उसे tone up करेगा और जीवननिर्वाह चलाने के लिए अंत:करण क्षमतापूर्ण बनेगा।

आंतरिक बल का प्रेरक

हमारे करण बहुत बेचैन, व्याकुल और अशुद्ध होने से कर्म करने की योग्यता कम होती है तो उसे योग्य प्रकार की बनाने के लिए भी भगवान का स्मरण उत्तम है । कोई कहता है कि पाप हो जाता है तो उसका विचार मत करो । एक बार भगवान के स्मरण में लग जाँय तो एक प्रकार का विवेक प्रगट होता है । और नकारात्मक वर्तन में से वापस आने का आंतरिक बल प्रगट होगा । तो समझो या न समझो कितने भी प्रयत्न करो फिर भी आंतरिक बल के बिना किसी में से वापस आने की संभावना नहीं है ।

इससे कहता हूँ कि भगवान के स्मरण से जीवन उत्तम बनता है । कर्म भी उत्तम प्रकार का होता है । इससे जैसे व्यापार में पूंजी जरूरी है वैसे भगवान के मार्ग में जाने के लिए नामस्मरण से स्वयंसूझ और रास्ता मिलता है और ऐसे करते आपको बहुत सरलता रहेगी; जीवन जीने की सरलता रहेगी । उसमें आनंद भी रहेगा ।

दि. १०-४-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

२. प्रभु का प्रागट्य

प्रमाण क्या ?

बहुत लोगों के मन में ऐसा होता है कि हम भगवान-भगवान करते हैं, किन्तु वह यदि प्रत्यक्ष हो तो अनुभव क्यों नहीं होता ? फिर यह सभी जड़, चेतन, ब्रह्म है; तो यदि सब ब्रह्म हो—भगवान हो तो उसका प्रमाण मिलना चाहिये ।

धर्म के लक्षण

जैसे अग्नि हो तो उसकी गरमी लगे, वैसे हमारे धर्म विषयक लक्षण पता लगें न ? हमारी संस्कृति विश्व की सभी संस्कृतिओं में बहुत उच्च स्थान पर और आदरपात्र थी । जब धर्म के लक्षण व्यवहार में हों, तब धर्म जीवंत है, ऐसा लगता है । धर्म जीवंत हो तो साहस, उदारता, धैर्य, हिंमत, सहनशीलता, अभय, समभाव इत्यादि उसके लक्षण हैं । ये सब लक्षण जब समाज में प्रवर्तमान हों यानी वे दीखें तब धर्म है ऐसा मान सकते हैं । अभी हमारा समाज बहुत सुषुप्त दशा में पड़ा है और प्रभुकृपा से भी अभी पतन की दशा आने की है । **प्रत्येक व्यक्ति स्वयं सोचे कि मुझे तो धर्म या भावना से बरतना चाहिए तो वह समाज को स्पर्श सकता है । यह समाज की उत्तम प्रकार की सेवा है । समाज की उत्तम प्रकार की सेवा करनी हो तो भावना से बरतना चाहिए ।**

हेतु की जागृति

हम देवदर्शन करने जाँय, तब यदि उसका जीताजागता हेतु हमारे में प्रवर्तमान न हो तो वह कर्म हमें मददरूप नहीं होता।

इसलिए उसके हेतु की हमारे में चेतनापूर्वक की जागृति प्रगट हो तो वह सहायरूप हो सकती है । हम आधा घंटा भगवान का नाम लें, किन्तु बाकी के समय में उसका कोई असर नहीं और कदाचित् हो फिर भी अलग हो । इससे हम समय का बँटवारा करते हैं और ऐसे दंभ बनता है । इससे इस तरह बरतने से वह फलित नहीं होता । इससे साधना में हेतु की जागृति हो, तभी फलित हो सके ।

बिना आचरण व्यर्थ :

फिर भगवान है कि नहीं ऐसी बुद्धि की वृत्ति बनाती है। हमारे यहाँ परंपरा से ऐसी मान्यता है कि अणुअणु में भगवान हैं । यह मान्यता सच्ची है फिर भी छिछली है । सचमुच तो वह दिल में उतरी नहीं है । **यह पृथ्वी, वृक्ष-पत्ते इत्यादि ब्रह्म हैं, ऐसी मान्यता है, किन्तु वैसी भावना से हम बरतते नहीं । सब ब्रह्म हो तो कहीं अनीति, दंभ, दुराचार इत्यादि आचरित नहीं होंगे !**

स्मरण से भगवान का प्रागट्य

किन्तु ऐसा हम सदा और पूर्णरूप से बरतते नहीं, इससे भगवान नहीं हैं ऐसा मान लेते हैं । हमारे में भगवान रहा हुआ है, फिर भी उसकी गरमी क्यों नहीं लगती ? इसका क्या कारण ? इस पृथ्वी के भीतरी भाग में बहुत गरमी है, फिर भी हम पृथ्वी पर चलते हैं और गरमी नहीं लगती । भीतर में रही गरमी का स्पर्श हमें नहीं होता। उसका अनुभव नहीं होता, किन्तु यह वास्तविकता है कि अंदर गरमी है । वह हमें नहीं लगती क्योंकि वह भीतर में है । भीतर में जो गरमी है उससे ३००-

४०० मील ऊपर पृथ्वी के पटल हैं । उसी तरह चेतन तो है किन्तु प्रकृति पटल से व्याप्त हुआ है । द्वन्द्व और गुण की बनी हुई प्रकृति चेतन पर व्याप्त हो गई है । इससे ऋषि-मुनिओं ने देखा कि अगर इस रीति से चलेगा तो मनुष्य को भगवान का भान प्रगट नहीं होगा । इससे समाज के मनुष्यों को कोई ऐसा सरल साधन दिया हो तो समाज के अनेक प्रकार के जीव, समाज में रहे मनुष्य आचरण कर सकें । और उन लोगों ने जो अनुभव किया उसका कथन किया है कि 'भगवान का स्मरण करो ।' उसका स्मरण करते उसके (भगवान के) गुण हमारे में प्रगट होते हैं । जैसे हम किसी के संबंध में आते हैं तो उसकी प्रकृति के, उसके स्वभाव के अनेक पहलुओं की जान पड़ती है, वैसे ही भगवान के गुणधर्मों का पता लगता है । इस प्रकार से निर्दोष से निर्दोष और सरल से सरल साधन भगवान का नामस्मरण है ।

प्रयोगात्मक हकीकत

कोई कहता है कि भगवान के स्मरण से यह सब कैसे टले ? प्रकृतिमात्र की पकड़ भी ढीली हो सकती है सही ? द्वन्द्व से मुक्त हो सकते हैं ? इन सब का प्रयोग करके अनुभविओं ने कहा है कि भगवान के स्मरण से यह सब हो सकता है। अणु-अणु में भगवान की शक्ति रही हुई है । ऐसा हजारों वर्ष से हम कहते हैं । यही फिर आज विज्ञान कहता है । इससे यदि उसका प्रयोग करें तो पता लगे । यह भी वैज्ञानिक हकीकत है । प्रयोग करके देखो तो पता लगे ।

प्रभुनाम के उच्चारण में गुप्त शक्ति

Word has got a mysitc power - भगवान के नाम में ऐसी गूढ़ शक्ति है । मंत्र में ऐसी शक्ति है । निष्काम और सकाम ऐसे दो प्रकार के मंत्र हैं । हमारे चार वेदों में पूरा अथर्ववेद मंत्रों का है । उसमें हम गहरे उतर सकें ऐसी शक्ति या तीव्रतम आतुरता हमारे में नहीं है । अनुभविओं ने ही कहा है । उनकी बात मानने से या हमारे में विश्वास जागे तो भगवान के नाम में कूद पड़ने से हमें बहुत सरलता रहेगी । कदाचित् इस जन्म में भगवान की प्राप्ति नहीं हो सकी, किन्तु इस संसार के त्रिविध ताप, वेदना, त्रास जो सब रहते हैं उसे भी अगर टालना हो तो–अरे, मनादिकरण के इस रोग को टालने के लिए भगवान का नाम यह प्रभावी औषध है । इस औषध से शांति मिलती है । जब–जब त्रास, क्लेश, कष्ट हो, तब भगवान का नाम लो, उसका स्मरण करो और वह भी (दीर्घ उच्चारण से) दीर्घ श्वास से । भगवान का स्मरण करें तो अनेक प्रकार के विचारों की पकड़ में से आप हलके हो जाओगे । प्रयोग से यह समझ में आये ऐसी हकीकत है । जब–जब पीड़ा, वेदना, त्रास, क्लेश इत्यादि हों, तब एकांत में यानी घर में, कमरे में या तो कहीं भी अगर भगवान का नाम ललकारें तो मन के आवेग का शमन होता है और जीवप्रकार की वृत्तिओं का भी शमन होता है । हम कहते हैं कि अरे, काम, क्रोध, मद, मत्सर, तिरस्कार इत्यादि भी बहुत उत्कट रीति से प्रगट हों, तब आप अगर दीर्घ उच्चारण से स्मरण करो तो कैसी स्थिति होती है,

वह आप अनुभव कर सकेंगे । उपरांत त्रिविध ताप मिटाने के लिए भी यह रामबाण इलाज है ।

मर्म पाने की रीति

सभी काम करते हुए उसका स्मरण करने का प्रयत्न करो। प्रयोग किये बिना सत्य समझ में नहीं आता; मरण से डरे बिना कूद पड़ें बिना वस्तु का मर्म समझ में नहीं आता ।

वैज्ञानिक जिस विषय के बारे में खोज करते होते हैं, तब कोई भी प्रवृत्ति में हों; अरे उसकी पत्नी के साथ समुद्रतट पर हाथ में हाथ रखखर फिरता हो, फिर भी उसके मन में और दिल में पलपल में उसके संशोधन के विषय की प्रवृत्ति का ही मनन-चिंतन चलता रहता है; बाह्य रीति से सब कुछ करता होता हो, फिर भी उसके विचार तो उस संशोधन के कार्य में ही होते हैं, तभी उसे उस वस्तु का रहस्य प्रगट होता है। इससे स्मरण में भी जब अखंडता, सततता प्रगट हो, तब मालूम पड़ता है कि उसका क्या महत्त्व है और वह क्या कर सकता है ।

हम कहते हैं कि इतना न हो सके तो इस **संसार के अनेक संघर्षण जो होते हैं, उनमें अगर दुःख न पाना हो, अरे हलकापन, शांति, प्रसन्नता प्राप्त करना हो तो उत्तम से उत्तम औषध भगवान का नाम है ।**

स्मरण के उठावे के लिए शर्तें

कोई कहता है कि **मोटा**, आप क्या गप्प लगातें हैं ? हम नाम तो लेते हैं, किन्तु कुछ नहीं होता ! तो भगवान का नाम लें, तब उसके उठाव होने के लिए अमुक भूमिका चाहिये; दवा

के लिए जैसे परहेज चाहिये वैसे । इससे अगर सचमुच स्मरण करते हों तो उसमें भूमिका चाहिए । सत-असत की वृत्ति हो, उसके संबंध में जागृति हो, हरएक के साथ कैसे बरतना उसका विवेक चाहिये । इससे स्मरण की भावना का उठाव होने के लिए रागद्वेष फीके पड़ने चाहिये । अनेक प्रकार के पूर्वग्रह से, मद-मत्सर से हम जकड़े हुए हैं । उनको अगर फीके करें तो भगवान की भावना का उठाव बहुत जल्दी होता है । इससे अगर उसका परिणाम पाना हो तो साथ-साथ रागद्वेष, पसंद-नापसंद, पूर्वग्रह की गाँठें इत्यादि फीके करें तभी स्मरण की भावना का उठाव बहुत शीघ्र होगा । बहुत से लोग किसी को पत्र में 'देव' लिखते हैं, किन्तु देव की भावना न हो तो वह खुद को ठगता है । उसकी अपेक्षा तो वह उसे न माने यह उत्तम । किन्तु दंभ उत्पन्न करने से या बनाने से पतन ज्यादा होता है । इससे भगवान का स्मरण का उठाव करने के लिए रागद्वेष फीके करने ही चाहिए । इसके सिवाय छूटने का उपाय नहीं है । और ऐसी जो पकड़ें हैं, उनको खोज-खोज कर फीकी करनी ही पड़ेगी ।

इससे भी आगे की शर्त

इससे सच्चे साधक को अनेक प्रकार की पकड़ों से छूटने की तत्परता जागृत होनी चाहिये । उसका उसे भान जागृत होना चाहिए । ऐसे होते उसमें से मुक्त होने का उसे प्रयत्न करना पड़ेगा । जिसे नकारात्मक प्रकार की वृत्ति हो, उससे तो वह मुक्त हो सकता है । उसका तो तुरत पता भी लगे । किन्तु अच्छी वृत्तिओं से तो वह मुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि उसे

तो वह भूत की तरह चिपकता है। क्योंकि वह ऐसा मान लेता है कि यही सच्चा है। ऐसी मान्यता या वृत्ति कदाचित् व्यवहार के लिए भले उत्तम प्रकार की हो, फिर भी चेतन की दशा पाने के लिए उसमें से भी मुक्त होना पड़ेगा; सर्वोत्तम बातों से भी उसे पर होना पड़ेगा। यह तो बहुत आगे की बात है।

रोगनिवारक औषध

इससे जैसे रोग हो – मानसिक रोग कि जिस में संघर्षण, दु:ख, वेदना हो तो दवा की तरह भगवान का स्मरण करो। पाव या आधा घंटा कमरे में बैठकर भगवान का स्मरण ललकारो और उससे आपको कुछ लाभ हो तो हरएक कार्य करते वह चालू रखो।

किन्तु प्रकृति का जहर इस स्मरण से कैसे फीका पड़ेगा? अगर शुद्ध जहर हो और उसे पीयें और वही जहर Diluted-यानी की फीका किया हो और उसे पी जाँय ये दोनों के परिणाम में फर्क पड़ेगा। भगवान के स्मरण से परिणाम में इस प्रकार का अंतर पड़ेगा। इससे भगवान का स्मरण है, संसार की अनेक प्रकार की प्रवृत्ति में मददकर्ता है। फिर जो जीव इधर–उधर हुआ करता है, भटका करता है, उसमें से भी उसकी वृत्तियाँ फीकी पड़ेंगी और उसे उस प्रकार की भावना प्रगट होती है।

भगवान सन्मुख होंगे।

बाकी वह (स्मरण) इस जीवन में मुक्त होने के लिए सरल से सरल, सबल से सबल, निर्दोष के लिए सहज, सर्वोत्तम साधन है। अनुभविओं ने अपने जीवन में साररूप

से खुल्ले दिल से कहा है कि भाइओ, दुःखी मत हों, इसके द्वारा अनेक संत-भक्त तर गये हैं' । आज भी ऐसे भक्त जीवित हैं । महात्मा गांधी को भगवान में अपार और अटूट विश्वास था । उनकी माला उनसे कभी अलग होती न थी । और उनके सभी काम भगवान पर अखंड विश्वास के कारण ही पार पड़ते थे । एक तो हमें भगवान पर ही विश्वास प्रगट नहीं हुआ है। अरे ! मनुष्य पर विश्वास नहीं है तो भगवान पर विश्वास कैसे हो ? फिर भी व्यापार-धंधे में या व्यवहार में मनुष्य में विश्वास करता है । संसार में लाखों का सौदा विश्वास से चलता है । संसार में बिना विश्वास के एक कदम भी नहीं चल सकते। तो भगवान में क्यों विश्वास नहीं रखते ? तो कहते हैं कि भगवान कहाँ सामने (सम्मुख) है ? कहाँ दिखता है ? तो हम कहते हैं कि उसका स्मरण करो, वह तुम्हारे सम्मुख होगा । वह सामने आये उसके लिए, उसकी भावना जीवंत रहे उसके लिए, भगवान का स्मरण यह बहुत सरल और सहज साधन है । उसे अनुभवी लोगों ने हमें दिया है और उसका आचरण करने से, उसका स्मरण किया करने की उसकी तीव्रतम भावना हमारे दिल में प्रगट हो सकेगी ।

दि.११-९-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

३. शब्द विषयक वैज्ञानिक विवेचन

वैज्ञानिक हकीकत

आजकल बहुत बुद्धि वाले लोग कहते हैं कि भगवान का नाम बोलने से क्या होता है ? दूसरे विज्ञान की तरह यह शुद्ध वैज्ञानिक हकीकत नहीं है । किन्तु हम कहते हैं कि यह वैज्ञानिक हकीकत है; भगवान का नाम से बहुत हो सकता है ।

पाँच तत्त्वों की लीला

हमारे ब्रह्मांड में पाँच तत्त्व हैं । आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी । सभी नक्षत्रों में पाँचों तत्त्व नहीं हैं । कितने में केवल अग्नि तत्त्व होता है । ऐसे बहुत हैं । फिर थोड़े आकाश, वायु और अग्नि वाले हैं एवं आकाश, अग्नि, वायु और जलवाले थोड़े । किन्तु हमारी पृथ्वी पर पाँचों तत्त्व हैं। इन पाँचो तत्त्व से menifestation (व्यक्तत्व) जो हो, वह यहाँ है । उसमें आकाश का व्यक्तत्व शब्द, वायु का व्यक्तत्व स्पर्श, अग्नि का व्यक्तत्व रूप, जल का व्यक्तत्व रस और पृथ्वी का व्यक्तत्व गंध है । जो शब्द है वह भावनावाचक है । इससे जब जो मूल शब्द होंगे या पहले जब मनुष्य होगा और पहला जो मूल शब्द होगा वह बहुत आकर्षक होगा । बालक पहलेपहल 'माँ' बोलता है और वह उसे बहुत आकर्षक होता है । वह नौ मास तक माँ के पेट में रहा होता है । इससे उसका आकर्षण माँ के साथ बहुत होता है वैसे ही जब मनुष्य जो पहले जो होगा उसका आकर्षण अज्ञात रीति से (unconsciously) चेतन के प्रति था । क्योंकि उसकी वृत्ति बहिर्मुख न थी । भाषा का

साधन नहीं था । तब बहुत सुधार की दशा में न थे । तब कदाचित् कपड़े भी नहीं पहनते हों । इसलिए जिसे संस्कृति या अंतर्मुखता कहें उस काल में विशेष अनुपात में होगी ।

वेदकाल की संस्कृति

किन्तु हम जिस प्रजा को जंगली अवस्था में थी ऐसा कहते हैं, वह ऋग्वेद का काल था या उसके पहले का समय (आज से लगभग ईस्वीसन् पूर्व दस हजार वर्ष) तब ऋग्वेद की रचना हुई और ऋषि-मुनिओं उसका उच्चारण करते । क्योंकि शब्द के प्रति उनका आकर्षण था ।

पहले जैसे अँधेरा हो और बाद में प्रकाश हो वैसे पहले जो स्थिति थी, उसमें से जिस संस्कृति का जन्म हुआ उसके पहले उसका impact तो होता ही है । अँधेरे में जैसे प्रकाश का impact होता ही है । इससे उस जमाने का या ऋग्वेद के उस काल का कोई अध्ययन करे तो किसी को भी लगेगा कि वे हमारे से अधिक संस्कृत थे । कदाचित् सुधरे हुए न हों, किन्तु अधिक संस्कृत या अंतर्मुख तो थे ही । दुनिया की किसी भी संस्कृति से हम उस समय में उच्च स्थान पर थे।

मूल बात पर—जब हम नहीं बोल सकते थे, जो जंगली अवस्था थी, तब शब्द का व्यक्तत्व हुआ । मेरे प्रवचन का मूल हेतु शब्द का महत्त्व है । आज भी अगर शब्द न हो तो बहुत दुविधा हो जाती है । कोई व्यक्ति मौन का पालन करता हो तो लिखकर देना पड़े ।

शब्द का उद्‌भवस्थान

शब्द आकाश से निकला है । वह ब्रह्मवाचक, चेतनवाचक और भावनावाचक है । उसमें जब निरंतरता, अखंडता प्रगट

हो, तब हमारा संधान आकाशतत्त्व के साथ होता है, शरीर पंचतत्त्व का बना है, वह तो हकीकत है । हमारे में आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी के तत्त्व हैं ।

शब्द का संबंध आकाश के साथ है । उसका जन्म आकाश से होता है । अगर शब्द की निरंतरता एक-सी प्रगट हो तो हमारे में आकाशतत्त्व खिलता है और फिर आकाश का संबंध गुण के साथ भी होता है । गुण तीन हैं : सत्त्व, रजस और तमस । आकाश का संबंध सत्त्व के साथ होता है । रजस का तेज और वायु के साथ और तमस का जल और पृथ्वी के साथ संबंध होता है । अब जब शब्द में सातत्य प्रगट हो, तब आकाशतत्त्व खिलता है और वह खिले, तब उसका संबंध सत्त्व के साथ हो । सत्त्व का विस्तार होने लगता और ऐसे होते हमारी जीवदशा फीकी पड़ती है यानी कि काम, क्रोध, तृष्णा, लोभ, मोह, मद, मत्सर इत्यादि फीके पड़ते हैं । अगर हम जीवदशा की वृत्तिओं को एक के बाद एक फीकी करने लगेंगे तो जिंदगी पूरी हो जाय । कोई एक गुण हम निर्मूल नहीं कर सकते और उसे निर्मूल करना चाहें तो उसके साथ दूसरे सब जुड़े हुए हैं।

सतत शब्द की शक्ति

उसे निर्मूल करते सभी को निर्मूल करने पड़ता है । इससे ऋषिमुनिओं ने देखा कि यह सब मनुष्य से नहीं हो सकेगा । इससे उन्होंने सोचा कि मनुष्य को कोई ऐसा साधन दो कि जो सभी करें । योग, तंत्र, ध्यान इत्यादि सब नहीं कर सकते; उसमें बहुत चित्तशुद्धि चाहिए । इससे अंधे, निर्बल, अशक्त,

रोगी, स्त्री, पुरुष, वृद्ध सभी ले सकें ऐसा साधन हो तो वह भगवान का नाम है, और भगवान के नाम के सतत स्मरण-रटन से आकाशतत्त्व खिलता है । फिर सत्त्व का संबंध आकाश के साथ होने से, सत्त्व विकसित होते, हमारे में जो सब जीवदशा के गुण—काम, क्रोध, लोभ इत्यादि फीके पड़ने लगते हैं और ऐसे जब भगवान का स्मरण सहज हुआ करे यानी कि अपने आप जैसे श्वासोच्छ्वास चलते हैं, रक्त बहता है वैसे effortless effort से स्मरण हुआ करे—जागृतिपूर्वक तो हमारे में शुद्धि होने लगे । हम श्वास लेते हैं, उसका जागृतिपूर्वक का ज्ञान नहीं होता । (क्योंकि वह सहज क्रिया है । किन्तु अजपाजप की क्रिया में ऐसा नहीं है ।) हमारे में ही पुरुष सुषुप्त स्थिति में है । वह पुरुष अजपाजप होते जागृत हो जाता है । और पुरुषतत्त्व जागृत होते consciousness प्रगट होती है और हमारे में जीवंत विवेक जाग जाता है । सामान्य जीवदशा का विवेक नहीं किन्तु जीवंत । वह तत्काल निर्णय कर सकता है, अयोग्य को अस्वीकार करके योग्य को स्वीकार करता है ।

वैज्ञानिक अनुभव की हकीकत ।

मतलब कि शब्द की साधना से इस स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं और यह पूर्णरूप से वैज्ञानिक है । क्योंकि ये जो पाँच तत्त्व हैं ये तो वास्तविक हैं। और शब्द आकाश में से उद्भवित हुआ है उसको कोई अस्वीकार नहीं कर सकते । इससे शब्द के सातत्य से आकाश तत्त्व खिलता है । उसमें से सत्त्व प्रगट होता है और ऐसे ऐसी स्थिति प्रगट हो, तब आकाशतत्त्व का अधिक विकास होने से सत्त्व के उदय से जीवदशा फीकी

पड़ती है । यह वैज्ञानिक है; यह सब संभव है; और यह कुछ देहाती की बातें नहीं हैं, किन्तु यह अनुभव की हकीकत है ।

अंधेरे के पोषक गुण

मेरे बहुत मित्र मुझे कहते हैं कि भगत, 'यहाँ अंधेरा किसलिए रखते हो ? तब में कहता हूँ कि 'कोई Operation- करना हो तो आप कोई डॉक्टर को कहोगे कि ऐसा करो या वैसा करो ? तो हम गुरुमहाराज की कृपा से इस technique के कुछ जानकार हैं । और जो हमें डर लगता है, वह अंधेरे से नहीं, किन्तु डर के संस्कार चित्त में पड़े होते हैं, वे उदय होते हैं, इससे डर लगता है। अंधेरे के कारण ही डर लगता है, ऐसा नहीं है । क्योंकि उसके अंदर पा-आधा घंटे के बाद तो उजाला लगता है । मेरा चले तो संपूर्ण अंधेरा रखूं। **कुंभकोणम् (तामीलनाडु) में तो बहुत छोटे छेद हैं, केवल तीन अंगुली जितने ही चौड़े हैं। अंधेरा हमारे ज्ञानतंतु और चित्तशुद्धि का पोषक है । इस प्रयोग को सिद्ध करने के लिए जितने अनुपात में चाहिये उतने अनुपात में भी अंधेरा नहीं रखा है ।** यह तो इधर जो सब मेरे मित्र आते हैं, उनकी समझ के लिए कहता हूँ ।

(२१-८-१९६२)

भोक्ता फिर भी साक्षी

सकल ब्रह्मांड में चेतन व्याप्त है । नरसिंह मेहता ने गाया है कि **'ब्रह्म नखरे करे ब्रह्म के पास'** । कुदरत में विविधता और विस्तार दोनों बात हैं । नीम एक Special विशेष जाति मानते हैं, किन्तु हरएक नीम अलग । ऐसे हरएक मनुष्य सही,

किन्तु हरएक मनुष्य अलग । ऐसे भगवान ने अनेक रूप धारण किये और अनेक में से एक होने का है । वह अनेक क्यों हुआ ? कारण अनेक रस लेने के लिए । **भगवान स्वयं भोक्ता होते हुए भी बंधते नहीं हैं । हम भोक्ता होने से बंधन में पड़ते हैं, किन्तु भगवान को बंधन नहीं है । क्योंकि वह साक्षी है । अगर हम साक्षी हों तो भोक्तापन हमें बंधनरूप नहीं होगा ।** हम प्रकृतिरूप हैं और उसके साँचे में बहते होने से प्रकृतिरूप हैं।

अलग होने के लिए शब्द

उससे अलग होना हो तो क्या करें ? तो सब से पहले तटस्थता, बाद समता और बाद साक्षीत्व विकसित हो । तटस्थता कैसे आये ? हम प्रकृति में पूरे डूबे हैं तो वह किस तरह से आये ? तो उसका भी साधन शब्द है । ऋषि-मुनिओं ने कहा है कि उसके लिए भी शब्द की साधना बहुत उपयोगी है । जब शब्द में हमारा अनुसंधान हो, तब हमारे चित्त में वह अलगपना पैदा करता है; और ऐसे धीरे-धीरे अलगपना सतेज होने से विवेक जागृत होता है और तत्काल निर्णय कर सकें ऐसी विवेकयुक्त शक्ति पैदा होती है । ऐसे तटस्थता और समता विकसित होते-होते अंत में साक्षीरूप बनता है । साक्षीरूप होते हुए भी ऐसे वे शरीरधारी होने से अनेक प्रकार के कर्म तो करने पड़ते हैं । किन्तु ऐसा मनुष्य जो कर्म करता है, उसमें जो निष्ठा प्रगट हुई है, चेतन जाग्रत हुआ है, अतः वह जो कुछ करे उसमें फर्क है । क्योंकि हम जीवदशावाले हैं, किन्तु वह चेतननिष्ठ होने से दुनिया में होते हुए भी, दुन्यवी कर्म करता

है फिर भी वह अलग रहता है । उदाहरणार्थ उसका कोई आश्रम हो तो वह उसकी व्यवस्था करता है । **वह उपयोग करे, तब उसे हरएक कर्म किस तरह करना उसके संबंध में समझ-जागृति होती है । उसका नाम ज्ञान । उपभोग में मानवी भोगता है । वह बंधनरूप है । किन्तु उपयोग में जो कुछ करे उसमें ज्ञान रहा हुआ है । ज्ञानदशा में साक्षित्व होने से वह बंधनरूप नहीं है; इससे मेरे कहने का मूल हेतु शब्द द्वारा हमारे में सत्त्व प्रगट होता है, वह है ।** शब्द द्वारा वह संभव बनता है और वह भी यह सब आपको वैज्ञानिक रीति से समझाया है ।

दि.२१-८-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

४. निवेदन से खुलापन

संस्कृति का बीज

इस संसार व्यवहार में हरकोई आदमी को कुछ न कुछ उलझने होती हैं और ऐसे समय में संसारव्यवहार के आदमी की सलाह लेते हैं। वैसे ही जीवनव्यवहार में जब उलझन आती है, तब हम भगवान के संदर्भ की सहाय पाते हैं। ऐसी सहाय अगर कोई जीव को समर्थरूप से जाग जाय तो जीवन में स्फूर्ति अनुभव होती है।

हमने भगवान को देखा नहीं है। किन्तु हजारों वर्ष से एक संस्कृति चली आती है; उस संस्कृति के बीज हमारे में चले ही आते हैं। कोई कहता है कि मैं भगवान में नहीं मानता, तथापि ऐसे आदमिओं में भगवान के संबंध की भावना सराबोर हुई होती है; नास्तिक हो ऐसे मनुष्य के रक्त में भी ऐसी भावना तरबतर हुई होती है। फिर वह किसी भी धर्म का हो। हरएक धर्म में भगवान के संदर्भ की मान्यता अनन्य रीति से रही है। और उसके कारण उस संस्कृति के बीज होते हैं और ऐसा मनुष्य भी संकट के समय में भगवान को पुकारे बिना नहीं रहता। क्योंकि संस्कार परंपरा से उसमें भगवान संबंधी भावना होती है। वे संस्कार कभी नष्ट नहीं होते; वे संस्कार उसमें सुषुप्त होते हैं। वे उदयवर्तमान नहीं होते; क्योंकि जिस समय में वह जी रहा है, उस संस्कार को उसके प्रारब्ध का बल उदय नहीं होने देता। इससे जिस प्रकार का प्रारब्ध भोगने का हो वैसे संस्कार पैदा होते हैं।

अगम्य भावना का बल

ऐसा होने पर भी उसमें एक अगम्य, अकल्प्य भावना का बल पड़ा ही होता है। जीवन में जैसे मनोभाव, भावना का एक प्रकार

है, वैसे भावना का भी एक प्रकार है और उसके जीवन में भावना के अनेक प्रदेश हैं । मनुष्य के जीवन में भलाबुरा दोनों रहे हुए हैं। कैसा भी खराब मनुष्य हो फिर भी उसमें अच्छा भी होता है। प्रत्यक्ष दुर्गुण होते हुए भी उसमें सद्‌गुण होता है, और कितनी ही बार वह भावना से व्याप्त होता है । इस देश में हिन्दू-मुस्लिम दंगे के समय दोनों जाति ने परस्पर अपने घर में दूसरी जाति के आदमी को रक्षण दिया है ऐसे अनेक उदाहरण हैं । गुंडा से गुंडा हो तो उसे हम माँ-बहन सौंपे तो वह खुद के जान के जोखिम से भी उनकी रक्षा करेगा। इससे ऐसे अनुमान पर आ सकते हैं कि हरएक में भावना रही है। और वह भावना तो चेतन का अंश है या चेतन का व्यक्तत्व है। हरएक में भावना रही है। तब ऐसी भावना हमारे जीवन में विशेषरूप से प्रगट हो तो उसकी सहाय प्रगट हो और उसकी सहाय मिले तो हरएक समस्या-उलझन में हलकापन हो, आराम अनुभव में आये और मन को शांति का अनुभव हो; और शांति, प्रसन्नता अनुभव कर सके तो बुद्धि शांत होने से हल करने में बुद्धि सहायरूप होने में सरलता होती है । **इससे उस समय भगवान का शरण लें और आत्मनिवेदन करें तो हमारा भार हलका हो जाय। ऐसे आत्मनिवेदन करने से भगवान के साथ एक प्रकार का संबंध होता है, उसे psychic touch (चैत्य संपर्क) कहते हैं ।**

आत्मनिवेदन

नवधा भक्ति है, उसमें उत्तम से उत्तम प्रकार की भक्ति वह कि जो कुछ हो, उसे भगवान को कहा करो यानी कि आत्मनवेदन करो वह है । **इससे जब कुछ भी हो, तब निवेदन करने से बुद्धि शांत हो और ऐसे करते हल करने**

में सरलता होती है और ऐसे करते उसके सहारे का हमें होश प्रगट होता है।

भगवान का आश्रय एक ऐसा प्रकार का है कि उसके जैसी दूसरी कोई शांति अनुभव में नहीं होती । उसको पाने के लिए निवेदन करना, उसका स्मरण, भजन, सद्‌वाचन सत्संग करने से, भावना का अनुसंधान विकसित करने से भावना का ज्ञानभान सुषुप्त पड़ा हुआ है, वह जागृत होता है । और सिर पर समर्थ बैठा है, ऐसा लगने से किसी प्रकार का भय और डर नहीं रहता । इस प्रकार की भक्ति करने से जीवननिर्वाह में भी सरलता रहती है । हम अकेले नहीं हैं, किन्तु सिर पर कोई है और वह सदा मदद करता है, हल करता है । **उसकी मदद का अगर उपयोग नहीं कर सकें तो हम कमनसीब हैं ।**

भगवान सूझाते हैं ?

संसार में शरीर को दुःख तो आयेंगे ही । और यदि भगवान के सहारे का अनुभव करना हो तो निवेदन किया करो; प्रार्थना, स्मरण, सत्संग की बातें करो; सद्वाचन करो तो दिल के अंदर सुषुप्त पड़ी हुई भागवती शक्ति प्रगट हो और अनेक प्रकार से हल बताती है, कल्पनातीत भान प्रगट करती है । जो सूझ-बूझ प्रगट होती है, वह अनेक प्रकार की समस्याओं के हल में मददरूप होती है, तब प्रश्न होता है कि भगवान सचमुच सूझ देते हैं ?

नवसारी का अनुभव

नवसारी आश्रम में मैं काम करता था और कर की लड़ाई में ठक्करबापा ने मुझे काम सौंपा और नवसारी आश्रम से गांधी

आश्रम (साबरमती) में जाना हुआ, तब सभी ने मुझे कहा कि आप ऐसा कुछ करो कि जिससे आपका स्मरण सदा हो। इससे अचानक मुझे स्फुरणा हुई कि हम साइकिल पर सूपा (गुरुकुल) जाएँ। तब तो वर्षा की ऋतु। वर्षाऋतु में रात्रि में कहीं नहीं जा सकते और रस्ता भी पूरा खराब। फिर भी निकले। किन्तु मुझे रास्ते में सूझा की अब आगे प्रवास मत कर। शाम को ४-५ का समय होगा। इससे मैंने लड़कों से यह बात की। किन्तु लड़कों ने मुझे कहा कि ८-१० मील और जा सकेंगे। किन्तु मैंने कहा कि देखो, यह जंगल मजेदार है। पेड़ के नीचे साफ करके बैठें। और यहाँ सब सुविधा है और रात्रि के समय जलाने के लिए लकड़ी ढूंढ़ लायेंगे और ऐसे रात्रि पार करेंगे। रात्रि में चौकी करेंगे। १२ तक तुम और १२ बाद मैं। हम वहाँ रहें।

ऐसा करके दूसरे दिन निकल गये। थोड़े दूर गये फिर तो ढ़ाई बाँस जितना खड्डा सड़क में था। उसमें से हम बच गये। अगर रात्रि में आगे चलते तो उसमें गिरते और बहुत लोग घायल होते। इससे ऐसी प्रेरणा हो तो उसे स्वीकार कर लेना। ऐसी प्रेरणा को शंकाकुशंका से बरबाद कर देते हैं। इससे बुद्धि के विचारों द्वारा ऐसे सूचन बंद हो जाते हैं। और ऐसे सूचन यदि स्वीकार कर बरतें तो ऐसे सूचन प्रगट होते हैं; और नहीं तो बंद भी हो जाय।

दुर्घटना से उबरे

एक बार गांधी आश्रम में काम करता था और बैंक से पैसे लाने थे। तब खानगी बस थी। एक आदमी बस में बात

बोला कि 'दुर्घटना हो तो ? बस में नहीं जाँय'। इससे मुझे हुआ कि मुझे यह सूचन है । इससे मैं वापस आया । और मैंने निश्चय किया कि मैं तो साइकिल पर जाऊँगा । ऐसे मैं तो सूचन मेरे लिए ही स्वीकार किया । सभी मुझे आश्रम में पूछते, भगत वापस क्यों आये ?' 'मैंने कहा, 'मैं तो साइकिल पर जाऊँगा ।'

और विद्यापीठ के पास उस बस को दुर्घटना हुई थीं । अनेक जख्मी हुए थे । ऐसा मैंने साइकिल पर जाते देखा । विद्यापीठ में जाकर सब मित्रों को उन लोगों को मदद करने कहा । पुलिस को बुलाने की भी बात की और मैं बैंक से पैसे लेकर लौटा, तब तक कुछ व्यवस्था नहीं हुई थी । किन्तु मैंने उस सूचन को स्वीकार किया तो उसमें से मैं बच गया।

किन्तु भगवान हमें चेतायेंगे तब जब हम खुले हुए हों और ऐसी सलाह का प्रेमभक्तिपूर्वक आचरण करें तो । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को वह व्याप्त कर लेता है । भगवान तो रोमरोम और मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् सब में व्याप्त हुए हैं; किन्तु हम मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् द्वारा चलते होने से उस मदद का हम स्वीकार नहीं कर सकते हैं । इससे ऐसा सहारा स्वीकार करने के लिए प्रार्थना, निवेदन, सद्‌वाचन, भजन करने से भगवान का सहारा हमारे दिल में प्रगट होता है ।

दि. २८-८-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

५. संस्कार की शक्ति

एक फिर भी अनेक

हमारा जीवन कितना सारा Complex (संकुल) है कि उसके अनेक पहलू हैं । एक ही जीव पिता, पुत्र, भाई, बहन इत्यादि होता है और जीव एक होता हुआ भी अनेक गुना और अनेक रीति से सभी के साथ जुड़ा रहता है । एक होते हुए भी वह अनेक में होता है । और अनेक में होते हुए भी वह फिर एक है । हम अलग-अलग रीति से अनेक के साथ संलग्न हैं ।

संस्कारों की सूक्ष्म गति

वैसे ही चेतन का एक से अनंत और अनंत से एक होने का लक्षण है । इस दुनिया में आरोहण और अवरोहण दोनों प्रकृति साथ आ रही हैं । काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार में मनुष्य इतना डूब गया है कि दूसरा कुछ सोचने का उससे बनता ही नहीं । भगवान ने हमें बुद्धि दी है, वह यह सोचने के लिए दी है । बुद्धि मित्र और दुश्मन भी है । वह आपको आत्मा के प्रदेश में ले जायगी; वह आपको काम, क्रोध वगैरह के प्रदेश में भी ले जायगी; वह आपको दोनों प्रकार में ले जायगी । वह स्वतंत्र नहीं है । वह राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मद प्रत्येक के रुख से चलती है । वह रूख क्यों उठता है? उसकी कोई नींव ? उसकी नींव अनेक प्रकार के संस्कार । जिन जीवों के साथ हम मिलें और उस समय जो संस्कार उठते हैं, वे हमारे चित्त में अंकित होते हैं और हमारे मन में उनके विचार-संकल्प उठते हैं । तब प्राण जागृत होता है और उस समय जो वृत्ति उठती है, उसके अनुसंधान में काम, क्रोध वगैरह

की वृत्तिओं के साथ संकल्प में प्राण जुड़ता है, उसमें बुद्धि जुड़ती है और शंका-कुशंका वगैरह करके उसका पट (Channel) निश्चित कर देती है और अहंकार उसमें गति कराता है।

चित्त की शक्ति

जो चित्त है, वह हमारे संस्कारों की तिजोरी है । हरएक संस्कार का उस में संग्रह होता है, फिर वह अच्छा हो या बुरा। हमारी पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और मन, बुद्धि, प्राण और अहम् इन चौदह इन्द्रियों द्वारा सब चित्त में संग्रह होता है । चित्त तो open camera है । उस में सभी जड़ जाता है । इसमें कोई फर्क नहीं । जो विचार करें उसके संस्कार चित्त में जड़ जाते हैं । अतः सुख का विचार करोगे तो सुख के संस्कार चित्त में जड़ेंगे । अगर मात्र सुख का विचार किया करो तो उस प्रकार के संस्कार पड़ेंगे । किन्तु सुख के विचार करते करते भी मनुष्य को दुःख के विचार आते हैं । ये विरोधी पहलू हैं ।

आत्मा में सतत सुख

सुखदुःख, सतअसत, रागद्वेष वगैरह ये दोनों साथ ही रहते हैं । इसमें फर्क नहीं पड़ता । **'सुखदुःख मन में न लायें, शरीर के साथ बने हैं'** (सुखदुःख मनमां न आणीए, घट साथे रे घडियां) ऐसा जो नरसिंह मेहता ने गाया है, वह सच है । क्योंकि सुखदुःख साथ ही रहेंगे । मनुष्यमात्र को सुख ही भाता है । यह उसके अंतर का कोई व्यक्तत्व है । कौनसा तत्त्व ऐसा है कि जो सतत सुख को ही खोजता है? तब अनुभविओं ने गहरा उतरकर देखा कि यह क्या है ? तो कहते हैं कि हमारे

में चेतन का तत्त्व है । गीतामाता भी कहतीं है कि 'सकल प्रकार के जीव पृथ्वी पर हैं, वे मेरे अंश हैं।' चेतन का अंश प्रत्येक में है और ये सब चेतन के गुणधर्मों का उन लोगोंने अनुभव किया । **चेतन यानी आत्मा ।** आत्मा का विचार करें तो दूसरी किसी भी प्रवृत्ति में भी उसे दुःख नहीं लगता । इसलिए किस तरह हम आत्मा में प्रगट हों तो दुःख न लगे। किन्तु हम प्रकृति के द्वारा सुचालित हैं । प्रकृति का गुणधर्म तो सुखदुःख दोनों में है । और हम प्रकृति में होने से सुखदुःख रहेंगे । तो उसमें अगर समत्व और समत्व से साक्षित्व प्रगट हो तो आत्मा के गुणधर्म में प्रगट हो सकते हैं। **अगर बुद्धि में समता प्रगट हो तो उसे योग कहते हैं ।**

यह कैसे हो ? तो कहते हैं कि रागद्वेष फीके करो । उसके सिवा समता प्रगट नहीं होगी । फिर उससे भी सरल उपाय खोजा । परिणामस्वरूप भगवान का स्मरण ही सरल लगा। क्योंकि दूसरे सब में बहुत चित्तशुद्धि चाहिए । इससे जपयज्ञ यह सर्वश्रेष्ठ उपाय है ऐसा लोगों ने अनुभव से खोजा। गीतामाता ने भी जपयज्ञ को श्रेष्ठ यज्ञ कहा है ।

शब्दशक्ति के संस्कारों का बल

किन्तु कोई पूछता है कि भगवान का स्मरण करने से चित्तशुद्धि होती है और वह आत्मा के प्रदेश में ले जाती है उसका कुछ rational बिलकुल वास्तवदर्शक समर्थन कर सकोगे? शब्द के अंदर एक गूढ़ शक्ति रही है । मेरे मित्र ने मुझे उसके बारे में एक बार कहा था : 'ॐ के लिए बुद्धि द्वारा समझ में आये ऐसा एक प्रवचन दो * ।' भावना से एक ही शब्द

* इसके बाद का प्रवचन

का उच्चारण हुआ करे तो उसमें शक्ति प्रगट करने का गुण है । संगीत में ऐसी प्रक्रिया थी । उससे वर्षा भी हो सकती थी और दीपक भी जला सकते । किन्तु वर्तमान में ऐसा कुछ कर सके ऐसे कोई समर्थ संगीतकार नहीं हैं । फिर भी संगीत में मृदुता, प्रसन्नता और नीरवता प्रगट कर सके ऐसी शक्ति है। हमारे यहाँ वर्तमान में पंड़ित ओमकारनाथजी हैं । (अब स्वर्गस्थ)। उन्होंने बहुत जगह संगीत द्वारा दिखाया है कि बाघ, सिंह को वे शांत करके हाथ फेर सकते । उपरांत कठिन से कठिन वस्तु को संगीत के राग के सूर से तोड़ सकते हैं, ये सब ओमकारनाथजी ने करके दिखाया है । संगीत से एक प्रकार का लय प्रगट होता है। और लय से एक प्रकार की मुलायमता pliability प्रगट होती है । ऐसा भगवान के स्मरण से भी हो सकता है । इससे मेरे गुरुमहाराज ने मुझे कहा कि तू ऐसा कुछ साधन बना । क्योंकि वह (साधक) जब १५-१६ घंटा स्मरण करेगा, तब उसे अंदर एक प्रकार का संस्कार पड़ेगा और उसका उदय वर्तमान होगा, तब उसे इसमें ही ले जायगा । अगर इसमें २१ बार रहे तो दूसरे जन्म में तो उसे साधना की ही वृत्ति रहेगी और हर साल बैठे तो उसकी बैटरी चार्ज हुआ करेगी।

दि. १-५-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

६. भावात्मक शून्यता और साकार शब्द

अनुभव का ज्ञान

ॐ के विषय में तो हमारे शास्त्रों में बहुत लिखा हुआ है । मैंने कभी शास्त्र पढ़े नहीं हैं । जब हरिजन सेवक संघ में था, तब सुबह ७ से रात्रि ८ बजे तक काम ही करता । उस समय भी हरिजनों पर जो जुल्म या त्रास गुजरता उसका निवारण के लिए गाँव-गाँव फिरता । तब से इस दिशा में—भगवान के मार्ग प्रति—मुँह फिरा । उसके बाद मुझे जो प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है वह कहूँगा, क्योंकि शास्त्रों तो कभी पढ़ा नहीं हैं ।

शब्द का मूल

बाईबल में प्रारंभ इस प्रकार है : In the beginning there was a word. शब्द यानी क्या उसकी अस्थिरता हो। तब word यानी क्या ? इस संसारव्यवहार में जो सब गति चल रही है, व्यवहार चल रहा है, वह शब्द से चल रहा है, उसके सिवा तो इशारा करना पड़े । फिर भी इशारा यह शब्द का सूक्ष्म स्वरूप है, तब उसमें भी शब्द की भावना तो रही है । तब प्रश्न उठता है कि शब्द से ब्रह्म का अनुभव कैसे हो ? संसारव्यवहार में प्रेम, घृणा, बैर वगैरह प्रगट होते हैं, ये शब्द से प्रगट होते हैं, यह बात हरेक कबूल करेगा । उससे प्रेम, सहानुभूति, सद्भाव, बैर, ईर्ष्या इत्यादि प्रगट होते हैं फिर भी उससे भावना भी प्रगट होती है, यह वास्तविकता है । वैसे पारमार्थिक क्षेत्र में ही काम, क्रोध, लोभ मोह, मद, मत्सर ये

शब्द से प्रगट होते हैं। कैसे प्रगट होते हैं ? इस पर भी शास्त्रों ने लिखा है। काम पर कामशास्त्र लिखा हुआ है। उसकी अलग ही टेक्निक है। उस विषय की शृंगारिक साहित्यिक भाषा है। वैसे ही क्रोध और मोह का है। ऐसे शब्द तीन प्रकार के हैं : स्थूल, सूक्ष्म और कारण। उसके तीन विभाजन होते तीन प्रकार मान सकते हैं। उसका एक में कैसे मेल बैठाये ?

'ॐ' का अति सूक्ष्म मूल

हजारों वर्ष पहले यानी कि जब भाषा का उदय नहीं हुआ था, तब बादल और उसका गड़गड़ाहट हो, उसे भगवान की आवाज माना; उसकी प्रार्थना वेद में है। ऐसे अनंत प्रकार के शब्द हैं एवं वनस्पति की मूक सृष्टि है जिसके अंदर एक खेल खेला जा रहा है; उसके कारण पृथ्वी पर जीवन रहा हुआ है और उसमें से उन लोगों ने मूल शब्द खोजा और जो प्रगट हुआ उसे 'ॐ' कहा।

'ॐ'कार में ब्रह्मांड

शब्द के उद्भव-स्थान तीन हैं। नाभि, कंठ और मूर्धन्य। इससे शब्द तीन स्थान से उठे और तीनों को स्पर्श करे ऐसा शब्द ॐ है। उपरांत शब्द के मूल, गण, लोम और स्थूल, सूक्ष्म और कारण ये सभी ॐ कार में समाये हुए हैं। ॐकार में अखंड ब्रह्मांड समाया हुआ है। केवल पृथ्वी नहीं, किन्तु समस्त आकाशमंडल भी उसमें समाया हुआ है ऐसा सभी अनुभविओं ने कहा है। बुद्धि से सोचें तो भी वह उसमें समा जाता है। उदाहरणार्थ एक विस्तार का भवानीबट का उल्लेख करें उसके साथ उसके सभी विस्तार उपरांत सभी जगह आ

जाय । ऐसा ही ‘ॐ’ का है । किन्तु यह अनुभव में आ सके ऐसा सही ? हाँ, किन्तु उसके लिए सतत साधना चाहिए । वह यदि अविरत रूप से—अटूट चलती रहे तो उसका अनुभव हो। उससे काम, क्रोध वगैरह फीके पड़ते हैं । बेंगलोर में मेरा एक मित्र है – Air Force में है । उन्होंने मुझे अभी कहा कि ४० हजार फूट ऊँचा विमान उड़े बाद वह Dive मारे तब उस आवाज की इतनी intensity उठती है कि उससे मकान भी उड़ जाय और अधिक आवाज हो तो विमान भी टूट जाय’।

सूक्ष्म चक्रों का विकास

ॐ से जो आंदोलन प्रगट होते हैं, वे तीन स्थानों से प्रगट होते हैं, यानी कि नाभि, कंठ और मूर्धन्य तीनों में से प्रगट होते हैं और उच्चारण के साथ । हमारे शास्त्रों में रीढ़ के अंदर मेरुदंड एवं जो चक्र कहे हैं वे हैं । आवाज के तीन स्थान कहे, उनकी बराबर सामने रहे हमारे ज्ञानतंतु के साथ जुड़े हुए वे चक्र हैं । नाभि के सामने ही चक्र है, कंठ में चक्र, मेरुरज्जु के मूल में—यानी कि जहाँ से सब गति हो वहाँ—चक्र है और मूर्धन्य में एक चक्र है । अब जब आवाज के आंदलन उठते हैं, तब वे सभी चक्र खिलने लगते है ।

समता

ॐ में तीन अक्षर अ, उ, म् । फिर भी सही रीति से उसमें एक भी अक्षर नहीं है । चेतन में जैसे दो पहलू हैं : निराकार और साकार । उसीके अनुसार ॐकार में ‘अक्षर होते हुए भी अक्षर नहीं है’ । ॐ बोलने मात्र से हमारे में भावना

प्रगट नहीं होती, किन्तु जो जीव भावना प्रगट करने के लिए (उसका) अगर एक साधन के स्थान पर उपयोग करता है, उसे वह उसमें मददरूप होता है । बहुत लम्बे समय ॐ का उच्चारण सतत रहा करता है तो ऐसे उच्च्चारण से मेरुरज्जु में जो आंदोलन फैलते हैं, उस कारण चक्र खिलते हैं और उससे समता प्रगट होती है । इससे सुखदुःख की स्थिति में समता प्रगट हो, तब जीवन में बहुत सरलता रहती है ।

ॐ का माधुर्य :

साधु लोग कहते हैं कि 'गृहस्थी ॐकार का उच्चारण नहीं कर सकते । इससे मैंने तो प्रयोग किया था कि उससे क्या होता है ? और साथ अमुक पुरश्चरण भी करना ऐसा मैंने तो निश्चित किया था । एक पुरश्चरण यानी २४ लाख जप । और इससे मुझे तो कोई नुकसान नहीं हुआ था । प्रत्येक जप के साथ ॐ हो तो वह मधुर होता है । हमारे साथ ढक्कन रहा है । चेतन में भी ढक्कन आया, इससे प्रकृतिरूप द्वन्द्व और गुणयुक्त हो गया । उस स्थिति में ॐकार कैसा कार्य करता है ?

गुणधर्म पहचानो :

द्वन्द्व अर्थात् दो आमने-सामने पहलू । सुखःदुख, प्रकाशअंधकार ऐसे दो पहलू । ये हमारे में घर्षण पैदा करते हैं और प्रकृति से प्रेरित हमें घर्षण में लाता है । इससे अगर उसमें दोष देखें तो दोष लगे । किन्तु हम ऐसा सोचें कि वह तो प्रकृति अनुसार बरतता है तो हमें कुछ नहीं लगता ऐसा अनुभव होता है । **जब से प्रकृति के गुणधर्म समझ लें, तब से वे हमें बाधक नहीं होते ।**

ॐकार का जब एक-सा उच्चारण प्रगट होता है, तब संसारव्यवहार में सरलता रहती है । संसारव्यवहार के संघर्षण और बेचैनी से रोग एवं कष्ट वगैरह होते हैं । तटस्थता और समता से यदि उसका संवेदन हो तो घर्षण कम होता है ।

जप शब्द का रहस्य

संन्यासिओं के लिए ही उसका रटन है, यह बात गलत है । ॐकार का उच्चारण सरल है । **जप सदा संक्षिप्त, Low consonent (भारी व्यंजन न हो ऐसा) हो और उसमें ह्रस्व स्वर हो और तीनों स्थान के स्तर को छेदन करे ऐसा होना चाहिये ।** इससे जब उसका सतत रटन-स्मरण हो तो प्रकृति के जो संघर्षण जाग्रत होते, बेचैनी हो उसे संवेदन करने से धीरे-धीरे कम होते जाते हैं और ऐसे कम होने से शांति और प्रसन्नता बढ़ते जाते हैं । ऐसा होते सकल वस्तु में से हमें ॐकार की लगन लगा करे और बाद में—Effortless effor जैसा अजपाजप जैसा हो जाय ।

प्रत्येक समय प्रकृति से कर्म करते रागद्वेष पैदा होते और वे रागद्वेष कर्म करते बढ़ते जाएँगे । क्योंकि उसे ख्याल नहीं है कि मुझे रागद्वेष फीके करने हैं । जैसे नदी में बाढ़ आये तो हजारों मन लकड़ी खिंच जाय, वैसे हम प्रकृति से खिंच जाते हैं ।

पुरुष की जागृति

ॐकार के सतत उच्चारण से समता प्रगट होती है, रागद्वेष कम होते हैं, द्वन्द्व और गुण की पकड़ फीकी पड़ती है । ॐकार के सतत स्मरण से सातत्य प्रगट होता है और मेरुरज्जु

के तीनों चक्रों को उसके आंदोलनों का स्पर्श होने से खिलते है । अतः समता प्रगट होती है और रागद्वेष फीके पड़ते हैं और ऐसे द्वन्द्व और गुण फीके पड़ते ही अपनेआप काम, क्रोध, लोभ वगैरह फीके पड़ते हैं और उनके फीके पड़ने से प्रकृति के द्वारा हम जो धकेले जाते थे, उसके बदले 'कोई दूसरा फोर्स' हमारे पास काम कराता है और द्वन्द्व और गुण हमें कर्म में धकेलते नहीं हैं । अर्थात् दूसरा जो कुछ हमारे में है, वह कर्म में धकेलता है - वह क्या है ? तो कहते हैं कि हमारे में जो चेतन है, वह द्वन्द्व और गुण फीके पड़ने से, प्रकृति फीकी पड़ने से, हमारे में जो पुरुष रहा है, वह जाग्रत होता है; और ऐसे होने से हम प्रकृति द्वारा प्रेरित नहीं होते । द्वन्द्व और गुण में प्रकृति से काम लेते हैं, तब तक चेतन या पुरुष सुषुप्त रहता है और प्रकृति हट जाने से हमारे में जो कर्म प्रगट होते हैं, वे चेतन के बल से प्रगट होते हैं । अर्थात् पहले जो प्रकृति से प्रेरित होते थे, उसके बदले अब प्रकृति के स्वामी बनने से प्रकृति के अनुसार प्रेरित नहीं होते ।

अध्यात्म में संशोधन

ॐकार का ऐसा अनुभव जो हमारे लोगों को हुआ, इससे Word has a mystic power ऐसा कहकर नहीं रुककर उसका संशोधन किया; आध्यात्मिक विज्ञान में इस तरह से लोगों ने बहुत संशोधन किया है । **पश्चिम में लोग जो खोज करते हैं, वे लोग भौतिकवादी materialist हैं । किन्तु हम सही रीत से देखें तो हम गलत हैं । हम तो आलसी-प्रमादी हैं । वे लोग चेतन को शीघ्र प्राप्त कर सकते हैं ।** हम

तो गप लगाते रहते हैं कि हमारी संस्कृति बहुत पुरानी और समृद्ध। किन्तु हम कैसे हैं ? हमारा पिता करोड़पति था, किन्तु हमारे पास कुछ न हो तो ? राजाओं के कुल में जन्मे हुए भीख माँगते हैं । इससे पुरानी संस्कृति से प्रेरणा पानी चाहिये अगर आगे आना हो तो ।

काल का अंतराय

हमारे लोगों ने अध्यात्मविद्या में अनेक संशोधन किये हैं। शब्द में गूढ़ शक्ति रही है, उसका अध्ययन किया और ऐसे करते उसका मर्म, रहस्य खुलते गये । उसका अभ्यास किया। उनको लगा कि चेतन का अनुभव करने काल अड़चनरूप है। तो उसे किसी भी तरह घटायें कि जिससे चेतन का अनुभव जल्दी हो ? इससे तंत्र में दो प्रकार हैं : कृष्ण और शुक्ल। हमारी वर्तमान परिस्थिति में उसका योग्य मूल्यांकन नहीं कर सकते। आइन्स्टाईन की Relativitly को पूरी दुनिया मे कदाचित् ही ५-७ व्यक्ति समझ सकते होंगे । थियरी तो गलत नहीं है, बिलकुल उचित है ।

तंत्रमार्ग शब्द के रहस्य पर है । वह शब्द भी ऐसा है कि उसका अर्थ भी नहीं निकाल सकते । बहुत बाह्मण लोग ॐ, ह्रीं, क्लीं ऐसे कितने ही शब्द हैं, उन्हें आराधना में बोलते हैं । किन्तु ऐसी आराधना करने के लिए हमारे में बहुत चित्तशुद्धि चाहिए । तभी तंत्रविद्या साध्य हो सकेगी । अगर कोई विकारी व्यक्ति तंत्र में लगे तो कदाचित् विकार बढ़ सकते हैं। किन्तु ॐकार ही ऐसा शब्द है कि विकार कम करता है ।

अर्थात् शब्द में जो गूढ़ रहस्य रहा है, उसका शीघ्र से अनुभव हो सके इसके लिए तंत्रविद्या है । इसके जानकार बहुत

कम हैं । उसके बीजरूप से उसकी हस्ती है । कुछ नष्ट नहीं होता। किन्तु यह सीखने की भावना कहाँ प्रगट हुई है ?

ॐ में त्रिलोक

ॐ में जो तीन अक्षर हैं अ, उ, म् उन तीन स्थानों के अंदर भी तीन लोक बसे हैं । किसीको ऐसा लगे कि गप है! किन्तु यह अनुभव से पता लगे । 'पिंड में वह ब्रह्मांड में' ऐसी एक कहावत है । जो खेल इस ब्रह्मांड में हो रहा है, वही हमारे शरीर में हो रहा है । इस शरीर में अणुपरमाणु की रचना है, ऐसी ब्रह्मांड में भी है । वे अणुपरमाणु फूटते हैं । उससे शरीर की शक्ति—गर्मी बनी रहती है । हमारे शरीर में अमुक माप में गरमी रहे तो खुराक भी पचता है । वे तीन स्थान वे तीन लोक के प्रतीक हैं । कोई ७-१४ लोक भी कहते हैं ।

In the beginning there was a word—वह Positive स्थिति है—वह भावात्मक है । उसमें से जब Manifestation हुआ वह शब्द हुआ । **बालक जन्म के बाद रोये नहीं तो घबराते हैं और मलत्याग न करे तो भी घबराते हैं । अर्थात् शब्द के पहले की स्थिति शून्यावस्था और मलरूपी जो वृत्तियाँ हैं, उसका त्याग करना पड़ता है । अर्थात् बढ़ना और जीना हो तो मलत्याग करना । अर्थात् जीना हो तो शब्द की उपासना करना और काम, क्रोध, लोभ इत्यादि का त्याग करना ।**

शब्द के पहले की स्थिति वह शून्यावस्था थी जो भावात्मक है, जहाँ शून्यावस्था है, वहाँ ॐ का अस्तित्व है, किन्तु सूक्ष्म स्वरूप से है । जब शब्द प्रगट होता है, तब वह साकार रूप से प्रगट होता है ।

भिन्न स्थान से प्रयोग करो

जीवन में चेतना के अनुभव के लिए शब्द की उपासना की आवश्यकता है । यह सब जानकर आनंद हो, किन्तु उसकी आराधना करनी कठिन है । आगे जाते जैसे शब्द के तीन मूल – वह किसी को एक, दो या तीन में से प्रगट हो । वे तीनों करण का हमें ख्याल नहीं होता । नाभि से जागे, मूर्धन्य से जागे तो उसका लाभ होता है । आप काम, क्रोध और लोभ के विकार में हों तो उसका पता तो लगे न ? प्रयोग के लिए शब्द नाभि में से उठाओ और देखो कि तुम्हारे मानस की स्थिति कैसी होती है । उसकी बुलंद आवाज आप में उन्मीलन कर देगी, एकाग्र कर देगी । प्रयोग करके देखो । कैसी भी उलझन में ऐसी ही आवाज बहुत मददरूप है । ऐसे ही कंठ और मूर्धन्य से उठती आवाज का भी असर होता है । करके देखो तो पता लगे ।

दि. १५-५-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

७. करने जैसा एकमात्र काम

संस्कृतियाँ

हमारी इस पृथ्वी के पट पर अनेक संस्कृति हो गईं । जिसने इतिहास पढ़ा है, वह इसके विषय में जानता है कि कितनी संस्कृति जन्मीं, उदय में आयीं, विकास के पंथ में आयीं, शिखर पर पहुँची और गिर पड़ीं ।

एक समय में रोमन संस्कृति इतनी प्रचंड थी कि बालक का जन्म होने पर वह अगर सशक्त हो, तो उसे जीने देना । बालक का जन्म होते, उसे ऊँची टेकरी पर से फेंकते और जीये तो जीने देते । उन लोगों ने अनेक जगह युद्ध करके अनेक राज्य स्थापित किये थे । ऐसा ही इजिप्त में भी था ।

विनाश का मूल

उसका मूल जाँचे तो जब-जब मनुष्यों में जीवप्रकार की वृत्तिओं की अभिवृद्धि होती जाय अर्थात् कि खुद का ही हित सोचना और दूसरों का भले जो होना हो वह हो; फलतः काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इत्यादि की वृद्धि होकर केवल अपने ही सुख का विचार हुआ करे, तब उसका नाश होता है। आज अनेक संस्कृतिओं का ऐसा ही है । बहुत सी गिरने की अवस्था में हैं और मैं तो उसे गिर पड़ी ही मानता हूँ ।

पश्चिम की संस्कृति का भविष्य

जो पश्चिम की संस्कृति है, उसमें भी स्वयं कैसे सुखी हो, उसकी ही खोज की है; और वे खोज ऐसी है कि उसके द्वारा वह लोगों का नाश करे और खुद नष्ट हो । उन लोगों ने तप तो ऐसा किया कि उसकी कदर कर सकें; किन्तु उस तप से

जिस संस्कृति का जन्म हुआ, उससे कल्याण भी हो या पूरी पृथ्वी का नाश भी हो । और अब भी ऐसी शक्तिओं को खोजने में वे लोग लगे हैं । उसके पीछे का हेतु एकदूसरे पर अपना वर्चस् स्थापित करे और एकदूसरे पर खुद प्रबल होकर उसको वश रखे ऐसी वृत्ति है ।

तप का हेतु फलित हो

देव-दानव के युद्ध के समय दानवों की ऐसी वृत्ति थी -यानी कि दानवों द्वारा देवों को हराना ऐसी एकमात्र वृत्ति थी। और उनका नाश करना । वही उनका ध्येय था । रावण ने उग्र तप किया था कि वायु कूड़ा-कचरा निकाले और इन्द्र पानी भरे । ऐसी कोई शक्ति उसमें थी कि जिसके जोर से देवों की संस्कृति का नाश करना, उनका पराजय करना । इससे वह तप आसुरी था । **जब तप करें, तब मन, चित्त, प्राण, अहम् की शुद्धि हो, तभी वह तप सच्चा । अन्यथा विनाश के पथ पर ले जायगा । यदि दूसरे को नष्ट करने की वृत्ति की तो खुद ही नष्ट होता है ।** आज अमरीका और रशिया दोनों के पास ऐसी शक्ति है कि दोनों का नाश हो जाय । दोनों एकदूसरे से डरते हैं ।

बल का प्रदर्शन

शिव का तांडव नृत्य इतना भयंकर था कि उससे सब डरते । वैसे ये दोनों एकदूसरे से डरते हैं; इससे वे लोग डर के मारे नहीं लड़ते । क्योंकि पूरी पृथ्वी और वे दोनों लोग नष्ट हो जाते । इससे बल का प्रदर्शन किया करते हैं और दो साँड़ जैसे लड़ते हैं, वैसे वे लोग लड़ रहे हैं । किसी जगह

बखेड़े होते हैं, इससे वे लोग आकर खड़े रहते हैं । हमारे देश में भी ऐसा ही चल रहा है ।

इतिहास से पदार्थपाठ (सीख)

इससे मूल बात - पूरी पृथ्वी पर जो संस्कृति जन्मीं वे समय पर नष्ट हुई । क्योंकि अपने सुख में संतोष पायें फिर भले दूसरे को दुःख, नुकसान, हैरानी होती हो; तो संस्कृति ऐसी हो जाय कि उसका नाश होता है ऐसा इतिहास कहता है । इसमें से मनुष्य जीव बेचारा सीख लेना जानता नहीं ।

चित्तशुद्ध की आवश्यकता

इतिहास यह देखता है कि कितनी संस्कृतियाँ आयीं और चली गईं, किन्तु मनुष्यजाति सुधरी नहीं । उसने इतिहास में से जाना और अनुभव किया है-पुराणों में असुरों ने शक्ति पायी और नष्ट हुए । क्योंकि उस शक्ति का उपयोग अपने उपभोग के लिए किया । उन लोगों के मन, बुद्धि, चित्त और प्राण की शुद्धि नहीं थी और अहंकार खूब बढ़ाया, फिर भी हम नहीं समझते । इससे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् की शुद्धि करनी चाहिये ।

प्रकृति का रूपांतर

तो जीवन अर्थात् क्या ? उसका हेतु क्या ? कोई कहेगा कि परोपकार के काम अच्छे हुए । किन्तु किसलिए ? अगर उसमें काम करते भी आपकी वृत्ति नहीं सुधरी तो जहाँ-तहाँ बखेड़ें ही पैदा होंगे ।

इससे प्रकृति और स्वभाव जहाँ तक नहीं सुधरते तहाँ तक —किसी भी क्षेत्र में हों—अरे, सात्त्विक से सात्विक क्षेत्र में हो फिर भी बखेड़ें ही करोगे । भगवान अर्जुन को कहते हैं, 'अबे, ये घोड़े हिनहिनायेंगे और शस्त्र खड़केंगे इससे तुम्हारा

स्वभाव लड़ने का है, तो तू लड़ेगा ही ।' इससे मनुष्य को अहम् को छोड़ना ही चाहिये । मनुष्य चाहे तब अहम् नहीं छोड़ सकता। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य उसकी प्रकृति द्वारा ही सुचालित होता है। अतः उत्तम से उत्तम कर्म भले हो, फिर भी जहाँ तक प्रकृति नहीं सुधरती तहाँ तक बखेड़ें होंगे ।

अपने को सुधारो

मैंने भी इस उत्तम प्रकार की सेवा में २० वर्ष तक काम किया है । तब बिलकुल बोलता नहीं । क्योंकि मुझे उस समय उसमें बहुत सूझ-बूझ नहीं पड़ती थी । छात्रालय के बालकों मुझे पायखाना जाते रोकते और कहते कि 'भगत बाद में जाना।' इससे लोटा रखकर काम करने लग जाता । उससे तबियत पर बुरी असर हो भी सही । किन्तु यह प्रकृति सुधारने के हेतु से करता । अतः प्रकृति सुधारने का कार्य सिवा कैसी भी सेवा करो तो अंदर बखेड़ें ही होंगे । **मुझे उस समय ज्ञान प्रगट हुआ था कि 'दूसरों को सुधारने की बात छोड़कर तू तेरी प्रकृति को सुधार ।'**

कर्म का हेतु

और जो काम करते हैं, वह काम प्रकृति को सुधारने के लिए है । कर्ममात्र भावना विकसित करने के लिए है और मनबुद्धि की शुद्धि के लिए है, ऐसा भान जागे तो ही उसका कल्याण हो । और हमारे मनबुद्धि में क्या पड़ा है, उसका भान एकांत में हो । उसका समर्थन बहुत अनुभविओं ने किया है। बहुत लोग मुझे कहते हैं, कि तुम यह क्या लेकर बैठा है ?'

एकांत का महत्त्व

अगर हमें दुनिया को सुधारना हो तो खुद को पहले सुधारना पड़ेगा; समाज को ऊपर उठाने खुद को पहले ऊपर

उठना पड़ेगा; और प्रकृति सुधारने, उसका महत्त्व समझ में आये और उसे सुधारने की गरज जागे तभी कुछ हो । प्रत्येक प्रह्लाद, ध्रुव नहीं बन सकते । किन्तु मनुष्य को अपनी प्रकृति में वह कैसा है, कैसे स्तर उसमें पड़े हैं, यह समझने का उसे बाहर अवकाश नहीं है; जब मौनमंदिर के अंदर यह सब उमड़ता है, तब बहुत से बेचैन होते हैं, किन्तु अगर कोई सद्भागी जीव उसे समझकर उस रीति से अपने को सुधारेगा तो हमें संतोष है । क्योंकि पूरी दुनिया नहीं सुधर जायगी, उसका हमें पता है । अतः हमारी प्रकृति और स्वभाव में शुद्धि करना है ।

करने जैसा काम प्रकृति का रूपांतर

किन्तु यह तुरंत नहीं होगा । जीवन में करने जैसा अगर कोई मुख्य कर्म हो तो यह है । उसे ही महत्त्व दीजिए । और **प्रत्येक कर्म खुद की प्रकृति को सुधारने करें तभी उसमें बदलाव होता है ।** बहुत से मेरे पास आते हैं, वे दूसरों की ही बात करते हैं; और अपना क्या है, उसकी बात नहीं करते। अतः मैं तो देखता हूँ कि सभी परायी बात किया करते हैं । वे ऐसा नहीं देखते कि खुद में भी अवगुण पड़े हुए हैं, किन्तु उनको नहीं देखते । इससे जिसे खुद को सुधरना है, वह खुद को ही देखे तो उसे उसकी समझ पड़े कि वह खुद सुधरने प्रयत्नशील है।

प्रभुस्मरण के साथ सद्व्यवहार

अतः मूल बात—प्रकृति को—स्वभाव को सुधारने की है। ऐसा भाव से भगवान का नाम लेंगे तो काम आएगा ही। अनेक संत हो गये । वे लोग पलपल भगवान का नाम लेते। हम वैसा नहीं करते । इससे वैसा उपयोग में नहीं आये । किन्तु

प्रकृति सुधारने मेहनत करेंगे और जो अनेक के साथ संबंध हैं, उन सब के साथ ऐक्य, सद्‌भाव से बरतेंगे तो ही परिवर्तन होगा।

व्यवहार द्वारा प्रयोग

इससे यह प्रयोग है, वह करके देखो । उसके बिना प्रकृति नहीं सुधरेगी । अगर उसे सुधारने की गरज हो तो संसार में जितने साथ संबंध हुये हैं, उन सब के साथ ऐक्य, सद्‌भाव विकसित करो और हमारे सुख के लिए दूसरे हैरान न हो उसका विशेष ख्याल रखो । किन्तु सही बात तो यह है कि प्रकृति को सुधारने की किसी को पड़ी नहीं है ।

श्रद्धा का महत्त्व

हम साधु-महात्मा लोग भी ऐसा कहा करते हैं कि 'कृपा सब कर देगी ।' और ऐसा कहकर समाज को उलटे रास्ते ले जाते हैं । किन्तु मैं तो गुरुमहाराज की कृपा से सच बात कहता हूँ कि 'भगवान का नाम लेते अगर उस पर श्रद्धा हो जाय तो उसका सहारा जैसा तैसा नहीं है । जैसे दीया जलता हो तो उसका प्रकाश चारों ओर फैल जाता है, वैसे अगर भगवान पर भरोसा बैठ जाय तो ढेर सहारा मिल जाता है ।' उसके लिए प्रार्थना, भजन वगैरह साधन से प्रकृति को सुधारें, तो धीरे-धीरे ऐसी श्रद्धा प्रगट होती है । श्रद्धा ज्ञानात्मक और बलवान है । श्रद्धा तो महाबल प्रगट करती है। श्रद्धा जीवन में नया प्राण भरती है, मुरदें को जिंदा करती है। ऐसी श्रद्धा प्रगट करने के लिए प्रकृति की शुद्धि करो और साथ-साथ भगवान का भजन-प्रार्थना करो तभी श्रद्धा प्रगट हो और ऐसे जीवन को ऊँचा ले जाने में आपको मददरूप होगी ।

दि. २२-५-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

८. भ्रम तोड़ो - भेद कम करो

भ्रम तोड़ो

हमारे समाज में भगवान के विषय में या तो सचमुच महात्मा हो गए हैं, उनके विषय में अमुक भ्रामक मान्यता फैलती है। हम कहते हैं कि 'भगवान के मन सब समान हैं । सभी पर करुणा करते हैं, दया करते हैं ।' इसी तरह महात्माओं के लिए भी भ्रामक मान्यता है । अत: समाज को उसकी सही समझ नहीं है । कोई महात्मा या भगवान आपको कुछ नहीं दे देगा; आपकी अभिमुखता जाग्रत हुए बिना कुछ नहीं होगा । अत: ऐसी गलत मान्यता फैले तब सही बात कहनी पड़ती है। गीतामाता ने कहा है कि **'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्** (४/११) । इससे महात्मा ऐसा कर दे और वैसा कर दे या ऐसा करे या वैसा करे यह योग्य नहीं है । वह कुछ आपका गुलाम नहीं है । अत: आपके मन में से ऐसी भ्रामक मान्यता निकाल देनी पड़ेगी । मेरा एक मित्र मुझे लिखता है कि 'मैं आपका मित्र हूँ' किन्तु मुझे पता लगना चाहिये न कि तू मित्र है और सचमुच मित्रभाव रखता है ? हम तो भगवान की कृपा से मित्रभाव रखते हैं । फिर बहुत से खाली खाली पैर पड़ने आते हैं, सिर झुकाया करते हैं । इससे हम कहते हैं कि भ्रम निकाल दो; गलत भ्रम में पड़े रहने से कुछ नहीं होगा ।

मान्यता को आचरण में लाओ

इससे ऐसी समझ मत रखो । एक जन तो मुझे लिखता है कि 'सांईबाबा ने ऐसा किया, वैसा किया ।' किन्तु उस विषय

की बहुत मान्यताएँ अत्युक्तिपूर्ण हैं । मैं कुछ महात्मा नहीं हूँ । हमारा वेश तो गृहस्थाश्रमी है । मेरे लिए भी सब गलत बातें करते हैं । किन्तु मैं तो सभी को प्रेम करता हूँ । **'मोटा तो अंतर्यामी हैं** ।' किन्तु तू खुद ऐसी मान्यता रखता है और बरतता है ? उलटा गुनहगार बनता है । **सचमुच तो जब भावनापूर्वक का आपका वर्तन होगा, तब भगवान तो आप में पड़ा ही है, वह प्रगट होने लगेगा । वह आप में है, समस्त ब्रह्मांड में है और फिर भी वह अलग है ।**

'मोटा' के साथ मित्रता बढ़ाओ

मेरे से ऐसे समय में क्रोध हो जाता है । मैं तो क्रोध करता नहीं, किन्तु शरीर है, इससे क्रोध हो जाता है । और जिन पर क्रोध करना पड़ता है, वे लोग मुझे उपयोग में भी आते हैं । अगर दुनिया में भगवान का लाभ लेना हो तो आप किस तरह उसे भजते हो, उसकी बराबर खोज कर लो तो उसके विषय में भ्रम नहीं रहेगा । इसलिए जिसे दोस्ती रखनी हो, उसे पहले मित्रता बनानी पड़ेगी । मैं तो रखता हूँ वह बाद में पता लगेगा। अतः संसारव्यवहार में संसारी बात करनी पड़ती है। सचमुच प्रेम करने वाला मनुष्य निःस्पृह है; वह परवाह वाला भी है और बेपरवाह भी है । मेरे गुरुमहाराज ने मुझे कहा है कि 'सब को प्रेम करना; सब को सच्ची बात करना ।' इससे मैं तो सब को सच्ची बात करता हूँ और निःस्पृह तो बहुत कम समय रहता हूँ।

अनोखा मौनमंदिर

मुझे ऐसा भी लगा है कि भाषण करने से कुछ सिद्ध नहीं होगा । इससे अंदर बैठायेगा तो कुछ तो अपने विषय में सोचेगा

और इसप्रकार सब भगवान तरफ थोड़ा भी मुड़ सकें ऐसी कोई योजना हो तो यह एक ही है । इस संसारव्यवहार में अनेक प्रकार की मुश्किल उलझन, चिंता होती हैं । बीमार पड़े तो ७ दिन खाट में पड़े रहने में कोई बाधा नहीं; किन्तु मौनमंदिर में ७ दिन रहना हो तो अनेक पंचायतें । अचानक बुखार आ जाय तो क्या ? अनेक तो मुझे कहते हैं कि 'महाराज, आप को आगे उलार नहीं और पीछे ढलान नहीं ।' **किन्तु यह रीत पूरे हिंदुस्तान में अनोखी है । यह रीत मेरी है, इससे नहीं किन्तु इस प्रकार के साधन से मनुष्य का मन थोड़ा भी भगवान की तरफ मुड़े, रागद्वेष फीके पड़ें; आशा, तृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मत्सर फीके पड़ें यही सच्ची सेवा है ।** उसका यश मुझे नहीं, किन्तु मेरे गुरुमहाराज को है। उन्होंने मुझे सूचित किया और सच्ची सेवा यही है ऐसा सूचित किया ।

स्वभाववश कर्म का परिणाम

जो लोग मेरे साथ संबंध में हैं, उनको विनती करता हूँ कि अंदर सरल हो; अंदर मनन करो । अपने लिए जो मनुष्य सोचता है, वह खुद का भला कर सकता है । इससे मेरे साथ पुराने रचनात्मक कार्यकर्ता हैं, उनको भी मैं तो ऐसा ही कहता हूँ कि भला करना हो तो खुद को भला करना पड़ेगा । हम प्रत्येक कर्म हमारी प्रकृति और स्वभाव के अनुसार करेंगे। भले सात्त्विक प्रकार का कर्म हो, किन्तु तुम्हारी प्रकृति और स्वभाव वैसा न हो तो कैसे सात्त्विक प्रकार से होगा ? अर्थात् जैसे

प्रकृति और स्वभाव वैसे ही वे होंगे, और प्रकृति द्वारा होते कर्मों से रागद्वेष बढ़ेंगे और ऐसे भेद बढ़ेगा ।

सुखी होना है, भेद कम करो

अगर भेद कम करना हो तो रागद्वेष फीके करो । बहुत–से मुझे कहते हैं कि समाज में बहुत झगड़े होते हैं, उसका कारण ? तो कहते हैं, 'कलिकाल ।' किन्तु मैं तो कहता हूँ कि जैसा काल, जैसी दशा चाहिये वह हम पैदा कर सकते हैं । क्योंकि हमारे में चेतन पड़ा है । इससे सुख पाना हो तो रागद्वेष फीके किये बिना वैसा नहीं होगा । क्योंकि **जगत में विविधता और विस्तार है । भगवान के ये स्वरूप हैं ।** अतः विविधता तो रहेगी ही । उसे कोई मिथ्या कर सके ऐसा नहीं है । इससे उसके साथ मेल रखना पड़ता है। बापबेटे को नहीं बनता, किन्तु दोंनों अगर सोचें कि भेद घटाना है तो घट सकता है। बुद्धि से कोई सोचे कि भेद घटाना है तो क्या हो जायगा ? बीमार होते हैं, तब दवा लेना सूझता है; किन्तु इसी तरह के बीमार हुए हैं, वह नहीं सूझता । मातापिता ने बचपन से बड़े किये तो तुम्हारा कुछ धर्म है कि नहीं ? किन्तु अभी तो बड़ों को सींग ही दिखाता है । **हमारी बात सच्ची हो तो समझाकर, नम्रता से, सद्भाव से कर सकते हैं । मन में नापसंदगी, बुरा भाव फैलाना यह हमारा धर्म नहीं है ।** यह तो पूरा समाज में फैला हुआ है । तो अगर सुखी होना हो तो भेद घटाओ। इसके बाद माता, पिता, पुत्र, पुत्री, भाई, बहन और कारखाने के मजदूरों के साथ भी भेद घटायेंगे तभी घर्षण घटेगा।

अपने विचार के लिए ही सद्भाव

अगर भेद घटाने का हम प्रयत्न करें किन्तु सामने वाला पक्ष ऐसा नहीं करे तो हमारी मुश्किल कम नहीं होती । किन्तु जो स्वयं भेद घटाना चाहता है, उसकी बुद्धि में सूझ-बूझ प्रगट होती है; इसलिए सभी के साथ उसका वर्तन ऐसा होता है । आनेवाले दिनों में उसमें से सद्भाव उगेगा या नहीं वह नहीं कह सकते, किन्तु संभावना सही । उदाहरणार्थ महात्मा गांधी और जिन्ना । इसमें गांधीजीने अंत तक सद्भाव रखा, किन्तु जिन्ना तो अपनी मान्यता में बिलकुल निश्चित थे । उसने कुछ जवाब नहीं दिया । वहाँ गांधीजी का सद्भाव नहीं उगा । उन्होंने तो सद्भाव ही रखा । इससे आपको खुद को आपमें कुछ बदलाव लगेगा, अगर सामने से Response न मिले तब भी।

आध्यात्मिक विज्ञानशास्त्र : गीता

हमारे शास्त्रों में आध्यात्मिक स्थिति का विज्ञानशास्त्र अगर कोई हो तो वह गीतामाता है । इसमें जो कहा है कि 'फलाना में मैं हूँ । मैं ऐसा हूँ, वैसा हूँ ।' यह सच है कि जैसा ज्ञान जिस समय प्रगट हो, वैसी स्थिति उस समय पर होती है । भक्त के लक्षण भी बारहवें अध्याय में हैं और पंद्रहवें अध्याय में उत्तम स्थिति भी बताई है । इससे गीता यह Practical Science है । श्रीकृष्ण ने कहा है इससे नहीं, किन्तु उसमें जो हकीकत है, इससे ऐसा कहता हूँ । प्रायः किसी लेख को कोई नामी व्यक्ति का नाम लगा देते हैं । पुराने समय में वेदव्यास का नाम लगायें तो उसका बहुत प्रचार होता था । पहले ऐसा होता था । किन्तु अभी किसी का लेख हो तो उसकी चोरी

करके खुद का नाम लगाते हैं, यह बहुत बुरा है । तो मूल बात है कि संसारव्यवहार में भेद घटाने के लिए बाप, बेटा, बेटी वगैरह में भेद घटाने का अगर प्रयत्न करें तो सुख मिलेगा । अनेक कहते हैं कि **'प्रारब्ध-में था, वह मिला ।' किन्तु मैं कहता हूँ कि 'पुरुषार्थ से प्रारब्ध-को बदल सकते हैं ।'**

बहुत सेवक सेवा करने अन्य ठिकाने जाते हैं; किन्तु खुद की सेवा नहीं करते । घर में बालकों के साथ बिलकुल नहीं बैठते । घर में पत्नी के साथ कुछ समय सद्भाव की बात न करें और जगत की सेवा करने निकल पड़ते हैं, इससे घर में भेद नहीं घटता । अतः घर में भेद घटाने की सेवा नहीं करोगे तो दुनिया की सेवा नहीं होगी ।

दि. १८-८-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

९. श्रीहरि भक्त का सभी हरे

जबरदस्त सहारा

अगर हम भगवान का स्मरण करते रहें तो वह अनेक प्रकार से सहारा देता है । हम जीवदशा में हैं, संसारव्यवहार में हैं, इससे उलझन, समस्या, मुसीबत इत्यादि रहेंगे ही । क्योंकि संसारव्यवहार का यह गुण है । उसको बदल नहीं सकते । अतः हम कहते हैं कि भगवान का नाम लिया करें तो उसका एक जबरदस्त सहारा रहता है । वह बहुत भारी सहारा है । संसारव्यवहार के कोई मनुष्य से वह सहारा बहुत बड़ा है । अतः जब-जब और प्रत्येक प्रसंग में यदि उसका आश्रय लिया करें और उसके साथ संबंध रखें तो जब हमारा मन क्षुब्ध हो जाय, तब वह हमारे जीवन में बहुत हलकापन पैदा करेगा ।

मौनमंदिर के संस्कार :

यहाँ मौनमंदिर में रहने को मिले और जो नामस्मरण यहाँ करते हैं, उसके संस्कार भी उतने ही गहरे होते हैं । उसके दो उदाहरण दूँ :

बाबुभाई तमाकु वाला १४ दिन बेहोश रहे थे । उस दशा में भी वे स्मरण करते । फिर पद्मासन लगाकर बैठते, इससे उनको जीने की मुसीबत थी फिर भी बहुत मददरूप सिद्ध हुआ है ।

दूसरा, यहाँ बारडोली (जि. सुरत, गुजरात) वाले उत्तमचंदभाई की छोटी बेटी निरंजना ७ दिन मौन में रही थीं । वह बारडोली

जाने के बाद उसके पिता के पास सोई और नींद में हरि:ॐ बोलतीं थी । उसके पिता को हुआ कि यह लड़की जागतीं है या सोई है ? इससे उन्होंने देखा तो सोई थी । फिर उन्होंने भी हरि:ॐ बोलना शुरु किया । इससे वह लड़की भी बोली और फिर तो उन्होंने उसे जगाकर पूछा कि 'तू जागती है या सोई है ? तो कहती कि सोई थीं ।' इससे नींद में भी उसके द्वारा भगवान का नाम लिया जाता था । इस पर से यहाँ मौन में बैठने वाले के संस्कार कितने गहरे पड़ते हैं, वह समझ सकते हैं । अत**: संसारव्यवहार में हमारा मन अनेक दिशा में विभाजित होने से मौन में स्मरण जितना गहरा जा सके उतना गहरा बाहर रहकर लेने से नहीं जा सकेगा । अत: ऐसे एकांत में किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति के बिना रहें, तब भगवान की धारणा इतने ऊपर ले आती है और उस कारण से रोग, दु:ख, मुसीबत इत्यादि में वह बहुत मददरूप सिद्ध होती है ।**

योगक्षेम-आध्यात्मिक उद्धार की शर्त

भगवान ने गीता में अभयवचन दिया है कि 'तेरा योगक्षेम मैं सिर पर ले लेता हूँ ।' किन्तु कब ? जो मुझे अनन्य भाव से भजता है, मेरे पास रह कर और अनन्य चित्त से अर्थात् जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मेरे पास जो चारों ओर बैठता है उनका; पलपल-नित्य, 'अभियुक्तानाम्' यानी कि जो सतत मेरे साथ अभियुक्त यानी आगे-पीछे सभी ढंग से जुड़े हैं, उनका योगक्षेम मैं वहन करता हूँ । **सच्चा अर्थ यह है कि उस जीव का आध्यात्मिक उद्धार मेरे सिर पर है ।** किन्तु उसके उपरांत

उसके जीवनव्यवहार का बोझ भी भगवान सिर पर लेते होते हैं । भगवान ने अनेक भक्तों के काम किये हैं । भगवान खुद नहीं आते, किन्तु वह निमित्तरूप से (Symbolic) भक्त के काम कराते हैं । और ऐसे समय पर वह भक्त तो भगवान ही साक्षात् आकर काम कर जाते हैं, ऐसा श्रद्धापूर्वक मानता होता है । अतः हमारे में ऐसी मान्यता है कि भगवान ही उसके काम करते हैं ।

इससे इस काल में भगवान में भक्ति नहीं होने से हमें ऐसा लगता है कि ऐसे कहाँ काम बन जाता है ? किन्तु ऐसी भक्ति नहीं है इससे लोग ऐसा मानते हैं ।

दो अनुभव

(१) मैं १९४०-४१ में गांधी आश्रम में था, तब मेरे नाम से एक Registered Insured पैकेट आया । उस में उर्दू या अरेबिक लेखन था । वहाँ गुलामरसूल कुरेशीभाई नाम के एक सज्जन आश्रम में रहते थे । उस लेखन उनको पढ़ाने के लिए हेमंतभाई को भेजा । वह भद्र से रजिस्टर हुआ था और उस में लिखा था कि 'तेरे पैदाईशी के दिन, '(जन्मदिन पर) विमान में बैठकर करांची आना ।' विमान की टिकट के पैसे भी एक ओलिया ने भेजे थे और दिन भी ३-४ या ५ ही रहे थे । पोस्ट से जानकारी दे सके ऐसी कोई संभावना न थी । उस पत्र में लिखी हुई हकीकत सच बनी हुई है । और विमान में बैठकर गया, तब इतनी ऊँची कक्षा पर जो अनुभव होना चाहिये, वह मुझे हुआ था । विमान में बैठा कि तब से मुझे समाधि लग गई थी, उतरा तब तक । और उस ओलिया के साथ बात से पता लगा था कि एक सज्जन को मैंने प्रेरणा की

थी और उसके द्वारा तुझे रकम मिली थी । ऐसा हो तब भक्त को ऐसा ही होता है कि भगवान ही मेरा काम करते हैं । अनन्य चित्त से या लक्ष से भगवान का भजन–कीर्तन – उसका स्मरण, जीवन में जीवंत रखा करें तो वह सब उसके सिर पर ले लेता है । और हमें कितनी निश्चिंतता हो जाती है !

ऐसा अभयवचन दिया फिर भी मानवी का मन भगवान में नहीं लगता। वेदकाल में भगवान की भावना का महत्त्व बहुत था । आज वह घट गया है । अतः हमारे जीवन में निश्चिंतता एक बार प्रगट करने के लिए वह बहुत आवश्यक है ।

(२) हमारी स्थिति बहुत गरीब थी और है । नडियाद में मेरे भाई हैं और वे लेग जैसे–तैसे निभाते हैं । ऐसी स्थिति फिर भी मैंने रचनात्मक कार्य किया । २० वर्ष तक हरिजन सेवा की है । उसके बाद गुरुमहाराज के हुक्म से उस कार्य को छोड़कर इस सेवा को करने बैठा, तब भी मेरे पास पैसे न थे । उस समय ४५/– रुपये से अधिक वेतन न लेना ऐसी प्रतिज्ञा की थी । परीक्षितलालभाई, हेमंतभाई और हरिवदन ठाकोर वे सब तो एकलराम थे, जब कि मुझे तो आठ व्यक्तियों का पोषण करने की जवाबदारी थी और उसमें मुझे कर्ज हुआ करता। तब एक व्यक्ति मुझे मिले थे जो मेरा कर्ज प्रत्येक वर्ष में पूरा कर देते। और उसके बाद यह सेवा करने लगा । ऐसे को एक के बाद एक बहुत सरलता भगवान ने कर दी है । मेरी कोई प्रतिष्ठा न थी । और यह कुछ मेरी महत्ता के लिए नहीं कहता किन्तु इसके द्वारा समझ पड़े कि भगवान को अनन्यभाव से भजने से भगवान उसके भक्त का काम सफल कर देते हैं । इससे उन पर भरोसा रखें, उन पर विश्वास रखें

तो वे हमारे काम करेंगे। इसका अर्थ ऐसा नहीं कि कर्म छोड़ दें । बुद्धि से हल करके प्रत्येक कर्म तो करना ही है ।

जब भक्त को आवश्यकता पड़ती है, तब भगवान रास्ते में से भी धन देते हैं । ऐसे एक दो प्रसंग बनें तो लोग 'काकतालीय' न्याय मानते हैं । 'काकतालीय' यानी कि कौआ का बैठना और ताड़पत्र का गिरना । किन्तु ५-६ समय ऐसा बना है और इसके साक्षी भी हैं । यह कब बनता है जब कि भगवान पर भरोसा, विश्वास, श्रद्धा प्रगट हो जाय तो । भगवान की अदृश्य मदद भी हमें मिलेगी ऐसा विश्वास इस समय में विकसित करने की बहुत आवश्यकता है ।

दि. २५-९-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

१०. प्रभुभाव का रहस्य

प्रश्न

मुझे एक भाई ने पूछा कि 'सभी को भगवान के दर्शन होते हैं । किसी को कुछ दर्शन होते हैं; किसी को कुछ–यह बुद्धिपूर्वक समझ में नहीं आता । उस समय जो कुछ दर्शन होते हैं, उस समय उसकी बुद्धि जैसी हो, वैसी बुद्धि हमारी हो तो समझ आयेगा। किन्तु ऐसी न हो तो भी कुछ जैसे का तैसा यानी कि Rationally बुद्धि से समझ सकें ऐसी समझ दीजिये !'

भगवान के दर्शन किस तरह ?

विज्ञान ने सिनेमा की खोज की है, यह तो देखते हो न ? वहाँ शब्दों के आंदोलनों को तेज के आंदोलनों में परिवर्तित किया जाता है, यह तो हकीकत है न ? तो कहगें 'हाँ ।' उसी तरह भक्त लोग एकतान से लीन रहें । उनके जो शब्द हों, उनकी तरंगें तेज में परिवर्तित होती हैं । और उस समय उसकी भावना और बुद्धि वैसी ही होने से उसे उस तेज में से भगवान के दर्शन होते हैं । अत: उसके गले में बात उतर गई थी कि 'बात सही है **मोटा**' ।

भिन्न रूप किसलिए ?

किन्तु भगवान का अस्तित्व हम में मिला हुआ होते हुए भी अलग है । इससे जब भक्त पुकारता है, तब उसमें रहा हुआ चेतन उसमें और बाहर दोनों जगह व्यक्त होता है । तब सवाल होता है कि प्रत्येक भक्त को अलग–अलग दर्शन क्यों होते हैं ? तुलसीदास, मीरांबाई, सूरदास को अलग–अलग दर्शन क्यों हुए ? नीम तो एक ही है । किन्तु प्रत्येक नींम अलग है।

वैसे प्रत्येक भक्त की भावना जैसी हो—यानी कि उसकी जैसी तत्परता हो—भगवान उसे वैसे दर्शन देते हैं । ऐसे तुलसीदास को राम, मीरां को कृष्ण-ऐसे दर्शन हुए। वे लोग उनका स्पर्श भी अनुभव कर सके थे। क्योंकि उनका पूरा आधार (अंत:करण-मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम्) ऐसा हो जाता है । **ऐसे तो सब कुछ ब्रह्मस्वरूप है, किन्तु आज हमारी ऐसी स्थिति नहीं है । क्योंकि, मल, विक्षेप और आच्छादन से हम ढँक गये हैं और हम जीवदशावाले हैं । इससे द्वन्द्व और गुण में उलझ गये हैं। इससे उन प्रत्येक की मर्यादा में हम आ गये हैं, इससे द्वन्द्व और गुण की प्रकृति जो बनी है, उसमें हम कैद हो गये हैं । हम यों तो अनंत स्वरूप में हैं, किन्तु प्रकृति, द्वन्द्व और गुण में बंद हो गये हैं, इससे हमारी शक्ति ढक गई है । अन्यथा चेतन के गुणधर्म, शक्ति, विस्तार जैसे ही हमारे गुणधर्म, शक्ति, विस्तार होने चाहिये । किन्तु वह सब हम प्रकृति, द्वन्द्व और गुण में होने से बंध गया है।**

तो प्रश्न होता है कि हम प्रकृतिरूप क्यों हो गये ? यह विवादास्पद प्रश्न है और अभी इसकी चर्चा नहीं हो सकती। 'चेतन तो स्वयंभू है । उसका परिणाम भी चेतन ही होना चाहिए। ऐसे प्रत्येक में चेतन दृश्यमान होना चाहिये ।' इस प्रकार बुद्धि सोचे, किन्तु यह सब तर्कपरंपरा है और फिर यह समझने के लिए भक्ति वाला दिल चाहिए ।

इससे मूल बात पर आयें । भक्त को भगवान के दर्शन क्यों होते है ? शब्द के आंदोलनों को तेज के आंदोलनो में जैसे परिवर्तित कर सकते हैं, वैसे ही भक्त में उसकी जो एक लीनता और भाव से बोले हुए शब्दों का तेज में रूपांतर हो

जाता है, और उसकी उस समय की भावना-बुद्धि भगवानमय होने से उसे ऐसे-ऐसे दर्शन होते हैं, यह वैज्ञानिक हकीकत है।

शब्द से ही सब चलता है

वेद की खोज है कि हमारे में पाँच तत्त्व हैं **:** आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी । आकाश में तेज की बात हुई और शब्द है, वह आकाश से निकला है। शब्द का मूल आकाश है । मूल शब्द ब्रह्म है । बाईबल में भी है कि In the beginning there was a word. भाई, दूर क्यों जाते हो ? इस दुनिया का सब व्यवहार, संसार, सगेसंबंधी व्यापार-धंधा सब शब्द से चलता है। इसको माने बिना किसीका चले ऐसा नहीं है । इसलिए अगर किसीके अच्छे मनोभाव प्रगट करने हैं तो उस प्रकार का शब्द निकलना चाहिए । अर्थात् संसार में सब शब्द से चलता है, इसे माने बिना किसी का चले ऐसा नहीं है । वह सब देखता है, समझता है, किन्तु जो शब्द ब्रह्मवाचक है, उस पर उसको भरोसा नहीं है । चेतन है, वह उससे भी अधिक प्रत्यक्ष है । वह दिखता नहीं, उसे स्पर्श नहीं कर सकते, क्योंकि उस तरफ मुँह मुड़ा नहीं है । **चेतन के प्रति हमारा मुख नहीं है, मुख तो संसारव्यवहार में है । अतः चेतन के प्रति मुँह घुमाएँ तो दिखेगा ।** यह कल्पना की बात नहीं है । विज्ञान से साबित कर सकें ऐसा है । इससे मुझे कोई पूछे तो बुद्धि से उसका उत्तर दे सकते हैं । **शब्द को ब्रह्म कहा है और ब्रह्म से शब्द प्रगट हुआ है तो उसमें ब्रह्म को प्रगट करने की शक्ति है ।**

प्रभु का निवासस्थान

शब्द की उत्पत्ति का मूल नाभि, कंठ और मूर्धन्य है । वे तो हमारे शरीर के अंदर हैं । शरीर में वे सब किसके साथ

संलग्न हैं ? तो कहते हैं, वे ब्रह्मरंध्र या तो हृदय के साथ संलग्न हैं । **चेतन का केन्द्रस्थान कहाँ है ? तो ब्रह्मरंध्र या हृदय में है । गीतामाता में भी कहा है कि 'मैं हृदय में हूँ ।' (सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टोमतः १५/१५) यानी कि शारीरिक हृदय में नहीं, किन्तु शरीर में छाती के बीच जो खड्डा होता है वहाँ और कुछ अंश में ब्रह्मरंध्र में ।** अतः शब्द निकलता है, उसका मूल हृदय में है । अर्थात् शब्द भी शरीरशास्त्र की दृष्टि से या आध्यात्मिक योगशास्त्र की दृष्टि से हृदय में से निकलता है ।

जैसे शब्द से संसार का व्यवहार चलता है वैसे ही यह व्यवहार भी । ऐसे यह व्यवहार चलाने के लिए वैसा शब्द चाहिए । अगर चेतन प्रगट करने के लिए शब्द चाहिए तो चेतन के प्रति अभिमुखता प्रगट करें ऐसा शब्द चाहिए ।

भगवान के प्रति अभिमुखता कैसे प्रगट हो ? ऐसी भूमिका वर्तमान में नहीं है तो दूसरा कोई साधन है ? तो कहेंगे - भगवान का स्मरण ।

सातत्यता जरूरी

वह (स्मरण) अखंडता या सातत्यता तक ले जाना चाहिये। वह ऐसा एक साधन है कि चेतन में निष्ठावान या चेतन में प्रगट हुए आत्माओं के प्रति सातत्यता प्रगट हो । अतः सरलता और अखंडता—गंगामैया के पुनीत प्रवाह जैसी—प्रगट हो जाय तभी बने । संसार में सातत्यता प्रगट होती है । व्यापार-धंधा में उसका ही विचार, चिंतवन होता है, फिर भी उसमें इच्छित परिणाम नहीं मिलता । किन्तु यदि आध्यात्मिक स्थिति में ऐसी सातत्यता प्रगट हो तो अधिक सजगता से, अधिक अच्छे परिणाम पैदा हो सकते हैं ।

आकार के लिए मुलायमता

भगवान का स्मरण, प्रार्थना, भजन, सद्‌वाचन इत्यादि दैनिक कर्मव्यवहार में संलग्न कर दें तो यह भावना हमारे हृदय के एवं शरीर के कितने ही द्वारों को खोल देती है । व्यवहार में भी अमुक प्रकार की समझ दृढ़ प्रकार की हो गई हो तो वह आध्यात्मिक क्षेत्र में नहीं चलती । उसे इस क्षेत्र में Pliable (मुलायम) बनाना पड़ेगा । जैसे कुंम्हार मिट्टी को लौंदा जैसी (कंकरी बिना की) बनाता है, ऐसी मुलायमता हमारे में प्रगट हो—और वह भी हेतु के ज्ञानभान वाली—तो ही चेतन का आकार प्रगट होगा; जैसे कुम्हार मिट्टी के बरतनों के विविध प्रकार के आकार बनाता है वैसे ।

भावविकास की प्रक्रिया

संसार में एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में शब्द प्रत्येक प्रकार से सब संवरता है । शब्द की शक्ति तो ऐसी है कि जीवप्रकार को सात्त्विक प्रकार का बना दे । अगर मनुष्य सोचे कि जो शब्द है, उसमें अगर सातत्यता प्रगट हो, उस सातत्यता से भाव की प्रतिष्ठा हो और ऐसी भाव की प्रतिष्ठा हो, तब संकल्पविकल्प घटते हैं । क्योंकि भाव में संकल्पविकल्प नहीं है । इसप्रकार शब्द की सातत्यता हो इसलिए भाव की सातत्यता होगी; और ऐसे होते भाव की गाढ़ता बढ़ती जाय यानी कि वह अधिक intense हो । भाव पहले थोड़ा रहता है, बाद में मध्यम, बाद में ज्यादा। ऐसे भाव की intensity होते ही भावावेश हो जाएगा और इसप्रकार उसे भावसमाधि लग जाएगी । ऐसा श्रीरामकृष्ण परमहंस को हो जाता था । सुंदर फूल देखें, सुंदर दृश्य देखें, सुंदर भाव का भजन सुनें, बादल आ जाय, ये सब देखते या सुनते उन्हें समाधि हो जाती थी।

बुद्धियोग के लक्षण

अतः भाव की गाढ़ता बढ़ाओ । उससे बुद्धि का तर्क, शंका-कुशंका करने का जो गुण है, वैसी वृत्ति बदल जाती है; जो प्राण है, उसका प्राकृतिक धर्म आशा, इच्छा, तृष्णा, लोलुपता यह सब बदल जाता है । ऐसे भाव की गाढ़ता हो जाने से यह सब बदल जाता है । **अकेला लोभ बदलना हो तो यह कुछ कठिन है । किन्तु यदि भाव बढ़ाओ तो सभी करण बदल जाते हैं। भक्तों में ऐसे भाव की गाढ़ता बहुत होती है । भक्त बुद्धू नहीं होता, किन्तु वह ज्ञानपूर्वक ऐसा बरतता होता है ।** भगवान तो गीता में कहते हैं, 'मेरे भक्त को मैं बुद्धियोग देता हूँ' **(ददामि बुद्धियोगं तं १०-१०)।** भक्त को विख्यात नहीं होना है । उसकी जैसी सूझ-बूझ ऐसी होती है कि दूसरे को पता नहीं चल पाता। **और उसमें जो बुद्धि है, वह दूसरे को पता भी नहीं लगने देता; उलटा मैला-गंदा जैसा लगे ।** अतः ऐसा भाव जब प्रगट हो और जैसे- जैसे उसकी गाढ़ता हो, तब भावावेश होता है, तब भगवान उसे बुद्धियोग देते हैं। फिर वह हरएक में समाधान करता है। फिर बाद में उसे नीति और अनीति जैसा नहीं होता । क्योंकि द्वन्द्व से निकलने की स्थिति में होता जाता है; वह Fourth Dimension चौथा डायमेन्शन में बसता है, हम तीसरे डायमेन्शन में हैं । वह द्वन्द्व की भूमिका में से निकल जाता है, ऐसे प्रयोग करने के लिए ये मौनमंदिर हैं । और बुद्धि से समझ सकें ऐसी बात है, किन्तु ऐसे प्रयोग करके खोज निकालें तभी सच्चा । इसलिए प्रयोग करके देखो।

दि. २-१०-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

११. चेतन का अनुभव

मूल आधार-चेतन

हमारे शरीर की रचना अगर जाँचें तो उसकी सब समझ ज्ञानतंतु के द्वारा होती है । ज्ञानतंतु का मूल दिमाग में है और दिमाग हमेशा ऊपर रहता है । उस दिमाग में कितने ही केन्द्र हैं। उदाहरणार्थ सुनने की शक्ति का, सूंघने का, देखने का । अत: आँख द्वारा जो दिखता है, वह आँख की पुतली के साथ सब ज्ञानतंतु जुड़े हुए हैं । उसकी गतिशीलता से उसका आकार स्पष्ट होता है । वैसे ही सुनने में कान के परदे को तरंगे टकराती हैं और वहाँ जो ज्ञानतंतु हैं, उससे टकराती हैं; इस तरह सुन सकते हैं । ऐसे ही नाक द्वार सूंघने का होता है, वे भी ज्ञानतंतुओं दिमाग द्वारा सुचालित होते हैं । अर्थात् दिमाग में सभी ज्ञानतंतुओं का केन्द्र है । आँख तेज का, कान आकाश का और स्पर्श वायु का केन्द्र है । वैसे जल और पृथ्वी तत्त्व भी वहीं रहे हैं । अर्थात् उन सब का आधार जिस केन्द्र में है, उसका मूल आधार चेतन है ।

मानवदेह में चेतन की शोध

उस चेतन का अनुभव करें तब क्या होता है ? चेतन का धक्का लगे । उसके द्वारा हाथपैर, सब इन्द्रियाँ काम करती हैं। सभी मनुष्यों को इसका भान नहीं है, किन्तु किसी एक भाग्यशाली जीव को उसका भान होता है । ऐसा भान जिसे जागता है, तब चेतनतत्त्व क्या ? उसकी शक्ति कैसी है ? उसके गुणधर्म क्या हैं ? उसका मनन-चिंतन हो । यह सब ऋषिमुनिओं ने एक

के बाद एक लेकर जाँचकर देखा । और ऐसे प्रत्येक को जाँचते-जाँचते 'यह नहीं' - 'नेति नेति करते गए । 'यह चेतन नहीं' ऐसे उसे खोजते-खोजते उन लोगों को हमारे शरीर में पुरुष और प्रकृति दो तत्त्व विद्यमान हैं, उसका पता लगा । उसमें प्रकृति का राज चलता है और पुरुषतत्त्व सुषुप्त है । वह प्रकृति को पूरी स्वतंत्रता देता है । आत्मा में साक्षित्व का गुण है, वैसा ही पुरुष का भी है । किन्तु पुरुष सुषुप्त दशा में होने से उसमें साक्षी का गुण होते हुए भी उसे संबंध नहीं है । अर्थात् प्रकृति कुछ भी कर्म करे तो वह प्रकृति से ही संबंधित है ।

सुवर्ण रंगी

पुरुष को वेदों में सुवर्णमय पात्र से ढ़का हुआ है, ऐसा कहा है । उसका सुनहरा रंग कब प्रगट हो ? यह तो प्रतीक है । जब सत्त्वगुण की प्रतिष्ठा हो, तब उसके करण, गुण, इन्द्रियों में उच्च से उच्च परिवर्तन होगा । कुछ साधक जो एक अंधेरे कमरे में रहते हैं, उनको किसीका स्पर्श नहीं होता, भगवत् भावना में रहते हैं, तब उसका रंग सुवर्ण जैसा होता है और वह बाहर हो और अगर सब से हिलता-मिलता रहे और सब के संपर्क में आये, तब भी यदि उसमें उच्च भूमिका हो तो ऐसा जो रंग होता है, वह भी बाह्य व्यवहार के कारण धीरे-धीरे कम हो जाता है ।

पुरुष का गुणधर्म

अतएव पुरुष सुषुप्त दशा में है, किन्तु उसमें चेतन के गुण हैं । वे यदि जाग्रत हो जाँय और वे यदि अग्र भाग में हो जाँय तो चेतन के गुणधर्म जाग्रत होंगे और उसका स्वरूप जाग्रत हो जाएगा । किन्तु प्रकृति के गुणधर्म जाँचने पर वह चेतन का

अंग नहीं है, जब कि पुरुष में समता, तटस्थता, साक्षित्व है अर्थात् वह चेतन का गुणधर्म धारण करता है । प्रत्येक कर्म करते वह अलग रहता है । **जैसे विमान में ऊँचे आकाश में जाते हैं तो सुरत शहर का दर्शन हो, किन्तु उस दर्शन का स्पर्श नहीं होता, वैसे ही पुरुषतत्त्व का दर्शन करते ऋषिमुनिओं को लगा कि उसमें साक्षित्व है; अतः वह यदि अग्र भाग में आ जाय तो चेतन के गुणधर्म प्रगट हो जाएँगे ।**

पुरुष को प्रगट करने की रीत

पुरुष अग भाग में कैसे आये ? प्रकृति के दो मूल धर्म—द्वन्द्व और गुण । **द्वन्द्व यानी सत-असत, राग-द्वेष, सुख-दुःख इत्यादि और गुण यानी सत्त्व, रजस और तमस ।** अतः यदि द्वन्द्व और गुण की पकड़ ढीली पड़े और उससे अलग हों तो पुरुषतत्त्व खिल उठता है—यद्यपि वह तो खिला हुआ ही है—यानी कि वह अग्र भाग में आ जाय । अतः इस विचार पर जब ऋषिमुनि आये, तब उनको लगा कि द्वन्द्व और गुण की भूमिका फीकी करनी चाहिये ।

भूमिका के अनुसार संस्कार

द्वन्द्व की जो भूमिका है, उसकी जो मुठभेड़ इत्यादि होती है, उसके संस्कार पड़ते हैं । वैसे ही सत्त्व, रजस और तमस की भूमिका हो तो उसके अनुसार संस्कार पड़ते हैं । तमस की भूमिका हो तो वैसा, रजस की भूमिका हो तो रजस का और सत्त्व की भूमिका हो तो सत्त्व के संस्कार ऐसे संस्कार पड़ते हैं।

गुण के लक्षण

तब सत्त्व यह गुण ऐसा है कि उससे इस प्रकार की भूमिका प्रगट हो कि उसे कूद सकें । वह जब जागा हो, तब पुरुषतत्त्व

ज्यादा जागा हो । तमस और रजस वह निम्न कक्षा की भूमिका है । तमस यानी प्रमाद, आलस्य इत्यादि । इससे उसमें तुक्के उठते हैं, किन्तु आगे नहीं बढ़ने देते । उसमें जड़ता ही होती है । फिर रजस में दौड़ा-दौड़ी, धमाल खूब होती, वह गति कराता रहता है। उससे हैरान हो जाते हैं । अतः उसमें एकसापन प्रगट नहीं होता, किन्तु सत्त्वगुण में स्थिरता, समता और तटस्थता है । रजस और तमस के जो छिलके हैं, उनका टूट जाना आसान है, किन्तु सत्त्व का छिलका टूटना मुश्किल है ।

सुवर्णपात्र का अर्थ

जैसे पुरुषतत्त्व सुवर्ण से ढका हुआ है, वैसे सत्त्व भी ढका हुआ है । वैसी भूमिका वाला धँधोलाता नहीं, अकुलाता नहीं । वह स्थिर रहता है । उसमें से सर्व प्रकार के हल निकला करते हैं । वह किसी भी उपाय से उसका रास्ता निकालता रहता है । जैसे गीता में कहा है कि **'योगक्षेमम् वहाम्यहम्' (९-२२)**, ऐसा जो साधक है यानी कि सत्त्वगुणी साधक सुवर्णछिलका को नहीं तोड़ सकता । वह उस आनंद में रहा करेगा । उस आनंद का हमें ख्याल नहीं, इसलिए कैसे उसका विचार आये ? अतः ऋषिमुनिओं ने सोचा कि यह भी अंतिम स्थिति नहीं है। 'नेति नेति'। **सत्त्वगुण में समता और तटस्थता तक आ सकती है, किन्तु उस में साक्षीभाव नहीं है ।** वह सुवर्ण का पात्र है । किन्तु सुवर्ण से ढका हुआ है । उससे भी चेतन का अनुभव नहीं होता, क्योंकि उसमें साक्षित्व नहीं है, अतः वह भी टूटना चाहिए।

सत्त्वगुण का मुश्किल गढ़

जैसे पुराने समय में राजा बड़े किल्ले बनाते कि जिससे दूसरे उनको जीत न जाँय । लग्न में गीत गाते हैं **: 'हम इडर का गढ़ जीते रे ।'** सत्त्वगुण हो तो दया, समता, सद्भाव इत्यादि होने से वह अपने दिल का विस्तार बढ़ाता है । वह कदापि स्वार्थी नहीं होता । सत्त्वगुण का छिलका टूटना बहुत कठिन है । उस समय भगवान उसकी मदद में आते हैं ।

अनन्याश्चिन्तयन्तो माँ ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमम् वहाम्यहम् ॥

(गीता ९/२२)

ऐसी उसकी भावना सतत प्रगट हुई है अर्थात् अनन्य भाव से वह भगवान को भजता होता है और 'पर्युपासते' यानी चारों ओर से वह भगवान की उपासना करता है । 'उपासते' यानी पास में बैठता है अर्थात् उसके साथ-साथ ही होता है। दूसरी रीति से कहें तो ऐसी भक्ति करता है, जिससे वह उसकी निकटता अनुभव करता है । फिर 'नित्य अभियुक्तानां' अर्थात् हमेश 'अभियुक्तानाम्' अर्थात् उसके साथ-साथ जुड़ा हुआ है । ऐसे का वह योगक्षेम वहन करता है । योग, 'युज-युज्य' अर्थात् जुड़ना । हमारे हृदय का तार जिसके साथ जुड़ा हुआ है, उसका क्षेम क्या ? अर्थात् योग में तार जुड़ जाने के बाद अनेक संग्राम होते हैं, वहाँ चेतन का बल ही काम लगता है । पुरुषप्रकृति का बल काम नहीं लगता । वह किसको मदद करता है ? जो मुझे भजता है । 'उसमें मेरे जैसे उसके गुणधर्म होते हैं यानी कि साक्षी बने । मैं इन सब में बस रहा हूँ । फिर भी अलग हूँ । ऐसे अलग आप बनो ।' यह उसका पहला गुणधर्म यानी

सब कुछ करते अलग रहो ऐसे सोचते-सोचते ऋषिमुनि इस स्थिति पर आये।

चेतनदशा पाने के लिए

सत्त्वगुण यों तो उत्तम है । ऐसे तटस्थता, समतायुक्त हो; बुद्धि भी उसकी स्थिर, प्रशांत होती है; चिरशांतिवाला और प्रसन्नतायुक्त है, किन्तु यह अंतिम स्थिति नहीं है, यहाँ वह आनंद की परिसीमा अनुभव करता है । वह कदापि चलायमान नहीं होता। क्षुब्ध नहीं होता । वह इस उत्तम स्थिति में रहता है । उसे दूसरे कोई प्रश्न नहीं उठते । ऐसी उसकी स्थिति है । सत्त्वरूपी तत्त्व है । वह सुवर्ण के पात्र से ढका हुआ है। उससे पर हुए बिना चेतनदशा को नहीं पा सकते । तब मेरे आपके जैसे को क्या करना चाहिए ? तीसरी या चौथी भूमिका वालों को क्या करना चाहिए ? तब उन्होंने कहा कि 'भगवान का स्मरण करो ।' ऐसा करते इस प्रकार की भूमिका बनेगी । सभी के साथ सद्‌भाव, ऐक्य बनाओ। भजन, प्रार्थना, सद्वाचन रखो और उससे जो भूमिका होगी, उससे सब छिलके टूट सकेंगे ।

'तू तेरा कर्म कर'

किन्तु मुझे कितने ही लोग पूछते हैं : हम सद्‌भाव, सुमेल सब रखें, किन्तु दूसरे यानी कि सामनेवाला अन्याय ही करता है तो क्या करें ?' तो उसको पूछता हूँ कि 'तूने क्या निश्चित किया है ? तो कहता 'उत्तम स्थिति में प्रगट होना ।' तो फिर मेरा जवाब है कि यह चलने दे । तू तेरा कर्म कर । तू सद्‌भाव नहीं छोड़ ।' तप तो करना ही पड़ेगा न ? तो यह तप है। किसीको हमने मदद की हो - चाहे जैसी भी मदद की हो और

तब भी वह उलटा बरतता है, हमें तंग करे तो हमने हमारा कर्म ईमानदारी से किया है, ऐसा मानकर संतोष करें । अगर ऐसा न हो तो ऐसी हमारी भूमिका तैयार नहीं है, ऐसा समझें। अतः इन सब में से मार्ग निकालें इस तरह तप तो करना ही पड़ेगा। तो कहता है कि यह तो बहुत कठिन है । अरे, संसार में मेहनत नहीं करते ? वह कम कठिन है ? तो इसमें भी मेहनत करनी ही पड़ेगी । अतः यदि मेहनत करते हो तो वेदना, त्रास, दम घुटना इत्यादि होता है तो तप करो । यानी कि किसी भी उपाय से सहनशीलता विकसित करो । सद्भावना बनाओ, मेल रखो इत्यादि करो । ऐसे बरतेंगे तभी हम सुखी हो सकेंगे। हम अगर दुःखी होते हैं तो हमारे खुद के ही कारण से । भगवान कुछ किसी को दुःखी नहीं करता । इससे ऐसे दुनिया में तप तो करना ही पड़ेगा । संसारव्यवहार में भी मेहनत किये बिना छुटकारा नहीं है और वहाँ टक्कर, उलझन, कठिनाई इत्यादि होंगे तो उसमें से बचने तप की भावना रखो और हमें तो सद्भाव इत्यादि रखना ही पड़ेगा । यदि उसके विषय में बिना ठिकाने का सोचोगे तो आपको भोगना ही पड़ेगा, उसके सिवा छुटकारा नहीं है ।

सावधान

अगर संताप किया तो संताप भोगना पड़ेगा । क्लेश किया तो क्लेश भोगना पड़ेगा । जैसा सोचोगे या करोगे वैसी छबि अंदर आ गई समझें ।

अगर हमारी समझ की आँख खुल जाय तो सभी का यह हल है । यह कैसे हो ? तो कहते हैं : उसे ऐसा हो जाना चाहिये कि इसमें से छूटना है । अतः ऐसी तीव्र तत्परता

चाहिए। प्रबल इच्छा जाग्रत होनी चाहिये । उसके बिना कुछ नहीं हो सकता । आप अगर इन सब से दुःखी हो गये हो, ऐसा लगे तो प्रबल इच्छा रखकर उस समझ की आँख खोलो। अतः भगवान का स्मरण बहुत आवश्यक है । उसका सहारा बहुत बड़ा है । संसारव्यवहार में अनेक प्रकार के सहारे हैं, किन्तु चेतन का सहारा सब से बड़ा है । किन्तु वह तब बनेगा कि जब उसके संबंध में अभिमुखता प्रगट हो । यानी कि हमारा मुख उस तरफ मुड़ जाय तो यह सब गौण हो जायगा । हमारे साथ वह बल जुड़ेगा । तो हमें उसका पता लगेगा । उदाहरणार्थ रुपये। वे हमारे पास जितने ज्यादा हों, उतने अनुपात में उसका बल उतना अधिक मालूम पड़ेगा । वैसे ही यह स्मरण; वह ऐसा बल है कि वह जितना अधिक ले सकें उतना अधिक बल मिलेगा । किन्तु यह प्रयोग करने से ही समझ सकेंगे ऐसा है। इसलिए हम कहते हैं कि प्रयोग करके देखो ।

दि. १५-१०-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरिः ॐ ॥

१२. भगवान के काम से भगवान राजी

'मैं हरि का, हरि है मेरा रक्षक यह भरोसा जाय नहीं; जो हरि करेगा वह मेरे हित का, वह निश्चिय बदले नहीं,

डाकोर के भक्त की बात

यह पंक्ति मथुरीबहन ने गायी, डाकोर में एक भक्त रहते थे, उन्होंने लिखी है । इच्छाराम सूर्यराम देसाई जिन्होंने 'चन्द्रकान्त' के चार ग्रंथ रचे हैं । वे इस पंक्ति के मूल रचयिता थे । इस पर से इच्छाराम सूर्यराम देसाई ने सब लिखा है । उस भक्त के पास बहुत कम पूँजी थी । आप सब जैसे मुझे प्रेम से कुछ-कुछ देते हो वैसे उनको मिलता रहता । उनकी एक पत्नी और एक पुत्र था और भगवान के भजन की प्रवृत्ति में कुछ पूँजी थी, उसे एक सेठ के वहाँ रखी थी और प्रारब्धयोग से सेठने दिवाला निकाला और उनको (उस सेठको) भी सूझा नहीं कि भक्त को उनकी रकम दे दूँ । फिर भक्त के पास तो बिलकुल साधन नहीं थे । ऐसे सेठ सूद उपरांत खर्च की बाकी की रकम भी देते, इससे वे सब प्रकार से निश्चिंत रहते । किन्तु पूरी रकम चली गई, तब उन्होंने यह लिखा था *'मैं हरि का, हरि है मेरा रक्षक यह भरोसा जाय नहीं; जो हरि करेगा वह मेरे हित का, वह निश्चिय बदले नहीं ।'*

दंभ नहीं करें

अतः ऐसी सचमुच की आपत्ति का समय आये, तब ऐसी पंक्ति बोली जाँय तो वही सही है । बाकी उस समय अगर धड़क पड़ी या हो तो वह सही नहीं । इससे भगवान पर जीवंत

भरोसा रहे तभी वह सही, नहीं तो दंभ है । अतः भक्त लोग जो गाते हैं, उसके अनुसार किसी भी संयोग में भी वे टिके रहते हैं । हम सब बोलते है, किन्तु हमें वैसा भरोसा नहीं होता। अरे, हमें तो हमारा अपना भी भरोसा नहीं होता । इससे ऐसा बोलना बंद कर देना चाहिये। क्योंकि उससे दंभ को पोषण मिलता है । दंभ तो बहुत नुकसानकर्ता है । इससे हमारी समझ सही समय पर सच्ची नहीं रहती हो तो ऐसा बोलने से कुछ लाभ नहीं। और ऐसे समय कोई हमें उस बात को याद कराये तो यह सब मुख का ही है ऐसा समझ में आएगा ।

मिथ्याचार नहीं चलता

ऊपर की पंक्ति की बात सही है, किन्तु उसका अनुभव हमें नहीं है । भगवान हैं, किन्तु उसका अनुभव हमें नहीं है और उसकी शक्ति का विश्वास नहीं है । इससे यह सब हमारे लिए बातें है । उसे सही करने के लिए मेहनत करो । कुछ त्याग करो तो पता लगेगा । यों तो समाज में सब मिथ्याचार का पोषण होता है । इससे हमारे जैसे महात्माओं को समाज पर निभना है, **अतः समाज को शाबाशी देते हैं । और सच्ची बात नहीं करते। धंधा साधु का, बेस बहुरूपिया का—किन्तु जो वेश निभाना चाहिए वे निभाते नहीं । इससे समाज और भगवान के एक नंबर के दुश्मन हैं ।**

भगवान का काम

कोई परोपकार के काम, एकदूसरे के लिए काम में आ जाँय ऐसा कुछ करें तो 'भगवान' 'भगवान' रटन काम का । इससे समाज में जो भगवान के विषय में मान्यता है, वह छिछली है। यह काम में न आये । जैसे बैंक में पाँच हजार

रुपये हों तो काम पड़े तब निकालते हैं, वैसे भगवान एक जबरदस्त बड़ी पूँजी है । उस पर लिखी हुंडी कभी भी स्वीकार हो सकती है । अगर आप उसके अस्तित्व को समझकर उसके कार्य करो तो आप उसका सहारा, ऊष्मा, बल इत्यादि समझ सकेंगे । उसके सिवाय पता नहीं लगेगा ।

क्या उपयोग का ?

संसार में किसी का प्रेम चाहिये तो खाली बोलने से काम नहीं चलेगा, उलटे खुले हो जाओगे । किन्तु अगर उसका काम करोगे तो उसका दिल जीत सकोगे, उसी प्रकार भगवान का काम करोगे तभी उसको राजी रख सकोगे । अनेक कहते हैं कि हम नाह-धोकर रोज माला करते हैं । किन्तु **पाँच या ग्यारह माला फेरने से कुछ नहीं होगा । यह गलत बात है । यह तो भ्रम है । ये माला उपयोग में नहीं आयेगी । किन्तु जीवन में जिसके साथ मिले-जुले हों, उन सब के साथ सद्‌भाव, सहानुभूति, ऐक्य, एकदूसरे के उपयोग में—काम में आओ और रागद्वेष फीके करो, अहम् घटाओ । ये सब भगवान के काम हैं । अतः माला से मैं इसे अधिक महत्त्व देता हूँ। कोई कहते है कि ७ लाख या ७ करोड़ माला करो तो भगवान के दर्शन हो जाएँगे । किन्तु ये सब बातें गलत हैं । जब दिल में से रागद्वेष, अहम् घटेंगे, सद्‌भाव, सहानुभूति प्रगट होंगे; एकदूसरे के उपयोग में आने की वात करोगे तो वह अधिक महत्त्व का है ।**

बोलना और बरतना अलग ?

यह सब ब्रह्म है, ऐसा हम कहते हैं तो फिर सब के प्रति पूर्वग्रह इत्यादि तो होते हैं तो यह गलत है । अगर सब ब्रह्म

हो तो सब में सद्‌गुण ही दिखेंगे । इससे केवल बोलने से कुछ नहीं होगा । इससे ऐसा करने से और यह सब चलाते रहो तो अगर भगवान हो तो वह तो मारेगा । वह तो है, किन्तु अलोप रहता है । उस बेचारे को दुःख होता होगा । इससे **संसार में करने जैसी बात तो यह है कि माला फेरने के बदले में रागद्वेष फीके करो । अहम्‌शून्य हो जाँय ऐसे बरतो । पूर्वग्रह दूर करो । त्याग करें । उदार हों, सद्‌भाव, सहानुभूति रखें । उदार दिल रखें तो हमारी भूमिका बनेगी ।**

दृष्टि खोलो

किन्तु लोग कहते हैं कि यह तो कठिन है । हमारे से नहीं होगा । केवल भगवान के नाम से कुछ नहीं होता । खाली जप लिखने से कुछ नहीं होता । किन्तु यह रागद्वेष, अहम् इत्यादि फीके करो । वैसा करने से भगवान के नाम में उठाव आएगा और तभी उसका लाभ मिलेगा । इससे देखने जाँय तो भगवान की शक्ति तो जहाँ देखें वहाँ दिखाई देगी, किन्तु ऐसी दृष्टि खुलनी चाहिए ।

मौनमंदिर : एक महान भूमिका

कोई साधना या भक्ति न करे, तब भी उसे जिसमें और तिसमें भगवान का महत्त्व लगे, तो समझें कि उसके दिल में भक्ति पनपने लगी है । दूसरे कारण दे, तब भी भक्ति उसमें नहीं पनपी ऐसा कह सकते हैं । कोई कहै कि उसका उदाहरण या प्रयोग दे सकते हो ? मेरा एक युवान मित्र ७ दिन मौन में बैठा था । कदाचित् ही वह १४ घंटे सोया होगा। मैं बाजू के कमरे में ही सो जाता हूँ। रात्रि में मुझे उसकी आवाज आया

करती । क्योंकि मुझे और उसे नींद नहीं आती थीं । उसने इतने तो पुस्तके पढ़ें और उनमें से नकल कर के मुझे पढ़ने भेजा। अतः ७ दिन में १४ घंटे सोया तो औसत २ घंटे की नींद हुई । फिर भी तबीअत अच्छी रही । और भोजन भी बहुत कम लिया था । एक समय भोजन लेता था । कॉफी भी नहीं पीता था । किन्तु कोई कहे कि यह तो दिल का उत्साह है। तो कोई दूसरा बैठे और देखे चलता है कि क्यों ? वह पता लगे । इससे अभी भक्ति पनपी नहीं है, वह मुख्य कारण है। अतः जिसमें भूमिका या ताकत हो वहीं चेतन का स्पर्श होता है।

विरल मित्र : 'मोटा'

आप सब मेरे मित्र हो और आपके निमित्त से मेरा आश्रम चलता है । मैं आपको महत्त्व नहीं देता, किन्तु भगवान को महत्त्व देता हूँ और उसका ही उपकार मानता हूँ । और वह मेरा हजार हाथ वाला है । क्योंकि सुरत में मेरा कोई पहचान वाला न था, किन्तु मेरा बहुत काम उसने कर दिया है । अतः वह मेरा हजार हाथ वाला और हजार आँख वाला है । क्योंकि कितने ही भाईबहन मेरी संभाल रखते हैं । **जब अहम् समूचा गल जाता है, तभी वह भगवान को महत्त्व देता है । ऐसे बहुत कम जीव मैंने देखे हैं । मुझे अनेक साधकों इत्यादि से मिलना हुआ है, किन्तु ऐसे किसी जीव का मुझे दर्शन नहीं हुआ है कि केवल भगवान को ही अग्र में रखकर बरताव करे ।**

संकट की स्थिति के समय में उपयोग का

जीवन में अनेक प्रसंग आते हैं। ऐसे प्रसंगों की वास्तविकता स्वीकार करते हुए भी वह भगवान को महत्त्व नहीं दिया करता। अतः तब तक वह साधक या भक्त नहीं है। उसमें भक्ति पनपी नहीं ऐसा कह सकते हैं। **इससे अपने स्वयं विकास के लिए रागद्वेष फीके करो, पूर्वग्रह छोड़ो, सद्‌भाव, सहानुभूति विकसित करो। दूसरे की बात छोड़ो। दूसरे कोई हमारी बदगोई या निंदा करे, फिर भी हमें कुछ न हुआ ऐसा बरतो। भगवान के स्मरण का तभी उठाव होगा। अगर यह सब आप करोगे तो उससे आपको सहारा, ऊष्मा, बल, उठाव इत्यादि मिलेंगे और तभी संकट की स्थिति के समय पर स्मरण उपयोग में आएगा। और तो ही संकट की स्थिति के समय टिक सकेंगे। अतः भगवान का स्मरण लिया हुआ काम का।**

दि. २३-१०-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरिः ॐ ॥

१३. देशभक्ति
(चीन के आक्रमण समय)

युद्ध अनिवार्य

गीतामाता ने कहा है कि **'युध्यस्व विगतज्वरः'** (३-३०) लड़ तो सही! लड़े बिना चारा नहीं और संग्राम तो जीवन की प्रत्येक भूमिका में रहा है । बिना संग्राम के जीवन की कोई भूमिका नहीं है । विचार करें तो संसार में तो युद्ध तो है ही और जीवन के क्षेत्र में युद्ध रहा है । तो किस तरह युद्ध करें? 'विगतज्वरः' ज्वर यानी बुखार । बुखार अनके प्रकार के हैं । एक, शरीर को आये वह । एकता प्रगट न हो । अहंकार चढ़ना, उत्साह प्रगट हो, शौर्य प्रगट हो, रागद्वेष, क्रोध, सख्त गाँठ इत्यादि हो । ये सब बुखार के प्रकार हैं, ये सब समूचे निर्मूल हो जाँय ऐसे लड़ो । जीवन में हम लड़ना नहीं चाहते हैं, फिर भी लड़ना पड़ता है । यद्यपि वह तो अंदर ही है । किन्तु उसमें कुछ एक विघ्न दूर करने हैं । अर्थात् जब ऐसी आपात्कालीन स्थिति का समय आये तब-यानी कि जब पांडव केवल पाँच गाँव ही मागते थे । उतने से संतोष था, किन्तु वह नहीं हुआ। फलतः महाभारत हुआ । उन लोगों की लड़ने की इच्छा नहीं थी, किन्तु लड़ना पड़ा ।

देश पर आक्रमण - प्रभुकृपा

वैसे हमारा देश युद्ध चाहता न था । यद्यपि बुद्धि से सब कहते हैं कि हमने कुछ तैयारी न की, उस विषय में कुछ सोचा नहीं था, किन्तु अगर तैयारी करते और लड़ाई का सिलसिला करते तब भी लोग ऐसा कहते कि 'हम दंभ करते थे' । क्योंकि

तैयारी करके युद्ध नहीं चाहते ऐसा कहना वह दंभ है । किन्तु युद्ध के लिए हमारी कुछ तैयारी थी नहीं, इससे हम दुनिया के सामने दिखा सकते हैं कि सचमुच हम लड़ना नहीं चाहते थे । बहुत सावधान लोग कहते हैं कि 'तैयारी रखनी थी, किन्तु हमारी कुछ तैयारी न थी' यह जानकर दुनिया को पता लग गया कि हम युद्ध नहीं चाहते थे । चीन को 'युनो' में भी दाखिल कराने के लिए अब तक हमने प्रयत्न किया है । हिन्दुस्तान ने किसी को दुश्मन नहीं माना है और प्राचीनकाल में इस देश में से अनेक ऋषि और साधु बाहर गये थे और हिन्दू संस्कृति और धर्म का फैलावा किया था । वहाँ किसी ने तलवार के जोर से प्रचार नहीं किया, किन्तु आत्मबल से संस्कृति फैलाई थी । रशिया तक और जावा-सुमात्रा इत्यादि देशों में; अरे, अमरिका तक हिन्दू संस्कृति फैली थी । हम वह आत्मबल खो बैठे हैं । इससे हमारे जीवन में से ताकत चली गई है । परिणामस्वरूप अंधे बनें हैं **। मनुष्य स्वार्थ में रत रहता है, तब वह अनेक प्रकार से दुःखी होता रहता है। उसके कारण उसे क्लेश, संताप इत्यादि हुआ करते है ।** तब भी वह उसे नहीं छोड़ सकता । किन्तु भगवान की जिस पर कृपा है, उसे वह किसी न किसी प्रकार से जाग्रत किया करता है । हमारे देश पर भगवान की कृपा है । दुनिया के अनेक देशों की अलग-अलग संस्कृति थी और वह अदृश्य हो गई, किन्तु हमारे देश की संस्कृति एक अति प्राचीन संस्कृति है । वह अभी टिकी रही है । दूसरी सभी संस्कृतियों का नाश हो गया । भगवान ने इसे अभी जीवंत रखा है ।

मातृभूमि का ऋण

किन्तु हमारी पूरी प्रजा घोर तमस में पड़ी है । हमारे में धर्म नहीं है, किन्तु दंभ है । हम भी यह वेश लेकर बैठे हैं। किन्तु हमारे में इतनी जाग्रत शक्ति नहीं है । कोई कहे : 'हम साधु महात्मा दुनिया से पर हैं । किन्तु जब तक महात्मा का शरीर है, तब तक उसे लेनदेन का संबंध है । उसे भी प्रारब्ध है और है ही ।' यह शरीर जिसके कण से बना है, उस माता को कैसे भूल सकेंगे ? शंकराचार्य तो संन्यासी हो गये थे और संन्यासिओं का पूर्वजीवन भूला जाता है, किन्तु माता के शरीर को अग्निदाह देने वे आये थे । अतः यह देह जिसके कण से बना है, उसे कैसे भूलें ? और जितना हमारे से हो सके उतना कर देना चाहिए । हम धन देते हैं, वह एक बार देने से नहीं चलता । **जैसे मुसलमानों के समय में हमारे में कमजोरियाँ थीं और एकता का अभाव था, इससे मुस्लिमों और ईसाईओं ने प्रवेश किया ।** वे हमारे दुश्मन नहीं हैं । हमारे मन से सभी समान हैं । **किन्तु उन लोगों ने हमारे पर जुल्म किया है और हमारे पर जुल्म हुये फिर भी संस्कृति टिकी रही । किन्तु फिर ऐसा न हो अर्थात् कि ऐसा जुल्म फिर से न हो यह देखने का हमारा काम है।**

एकता जरूरी :

इतिहास देखो : समग्र देश एक होकर किसी का मुकाबला किया हो, ऐसा एक भी प्रसंग नहीं है । पांडवों के समय में अंदरअंदर के युद्ध में बहुत साथ में हुए थे । किन्तु बाहर के कोई दुश्मन के साथ ऐसा व्यवहार नहीं किया है । उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सभी एक हो जाना पड़ेगा और एक हुए बिना पूरा सामना नहीं हो सकता ।

भक्ति का स्वरूप

यह युद्ध लम्बे समय तक चलेगा । रेशनिंग आये, पेट्रोल की, मिट्टी के तेल की तंगी हो, उस समय हम टिके रहें और गाली न दें । देश हमारा है, उसके लिए सहन करने की तैयारी रखेंगे तो भक्ति मानना । ऐसी भक्ति हमारे में नहीं है । भक्ति कुछ स्थगित (Static) नहीं है । वह परिमाण वाली (Dynamic) है । जीवन के अनंत पहलूओं में वह विलसती है और जीवन को तेजस्वित करती है । इससे तो भगवान कहते हैं कि 'मेरे-भक्त को मैं बुद्धियोग देता हूँ ।' यह परिभाषा है । जीवन में अनेक प्रकार की भक्ति हैं। देश, समाज, मिले हुओं के प्रति सद्‌भाव, देश के प्रति की फर्ज, फनागिरी, सहन करने की शक्ति इत्यादि हमारे में जीतीजागती प्रगट हो यह आवश्यक है। वह प्रगट न हो तो भक्ति नहीं है ।

भक्ति में नम्रता, पराक्रम, साहस, शौर्य, उदारता, सहनशीलता होती है और ऐसे भक्त में जो नम्रता होती है वह तो सिंह की नम्रता है । भक्ति तो शौर्य, पराक्रम, नम्रता, उदारता प्रगट करती है । वह तो सिर दे देती है।

आर्यसंस्कृति के वारिसदारों जागो

कोई कहता है कि यह आप कहते हो, किन्तु आपने क्या किया ? हमने भी २० वर्ष तक मातृभूमि की सेवा की है । मेरा चले तो मैं भी वोर-फ्रंट पर खड़ा रहूँ ! किन्तु ६५ वर्ष का शरीर यह काम न दे पाएगा । मैंने तो प्रत्यक्ष जीवन में यह उतारकर दिखा दिया है । २० वर्ष तक सेवा करके आपको यह कहता हूँ । यह कुछ केवल उत्साह बढ़ाने के लिए नहीं कहता हूँ । किन्तु जीवन में आचरण करने के बाद कहता हूँ। हमारी संस्कृति जिंदा है। रोमन, ग्रीक इत्यादि संस्कृति मर मिट गईं और हमारी एक ही संस्कृति जिंदा है । ईसाई और मुस्लिम

संस्कृति बाद की हैं । आर्य संस्कृति सर्वप्रथम है । उसके हम वारिस हैं, यह हमारा महत् भाग्य है ।

स्वयंस्फुरणा का महत्त्व

यद्यपि युद्ध तो हमारे पर बलपूर्वक आ पड़ा है । (विगतज्वरः) अतः उसे अगर मदद करने की आवश्यकता हो तो वैसा करें । हमने उसे 'युनो' में दाखिल कराने का प्रयत्न किया । उसको अनाज भी भेजा था । इससे मेरी दृष्टि से हमने जो किया है, वह सत्य है । 'विगतज्वरः' यानी बिना दुश्मनी हमें उसे हटाना है यह बात निश्चित । अतः देश के लिए भक्ति प्रगट करनी पड़ेगी । एक बार की मदद से मुक्त नहीं हो जाना है । बहुत मुसीबतें आएँगी । रेशनिंग आये, पेट्रोल की तंगी हो जाय । व्यापार-रोजगार भी तितर-बितर हो जाय । व्यापार करते हैं और माल विदेश भेजते हैं । उसे परवाना (अधिकार-पत्र) मिलता है, उसमें भी मुसीबत आएगी । इससे जिसे चेतना हो, वह चेत जाँय । यह सब कहने की बात यानी कि मुझे आप को सावधान करना है । क्योंकि लड़ाई लंबे समय चले तो यह सब संभावना है सही, और कमाते हैं, उतना कमा नहीं सकेंगे और सरकार भी कानून द्वारा या जबरदस्ती से ज्यादा लेगी । ज्यादा कर देना पड़ेगा । हमें देना तो पड़ेगा ही । तो बलपूर्वक नहीं देना, किन्तु उल्लास से दें । किसी की शरम से नहीं । किसी की देखादेखी से नहीं, किन्तु खुद देना है । देखादेखी से देंगे तो व्यर्थ है । वह सही उपयोग में आये उसके लिए प्रेम-उल्लास से स्वयंस्फुरणा से देना ।

दि. ६-११-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

सूचि

अपने को सुधारो	५१
अंधेरे का महत्त्व	२६
आक्रमण देश पर	८४
आत्मनिवेदन	३०
आत्मा की शक्ति	३५
आध्यात्मिक विज्ञानशास्त्र-गीता	५७
आरोहण-अवरोहण	३४
इच्छाराम सूर्यराम देसाई	७८
ऋणमुक्ति का अनुभव	६२
एकता जरूरी	८६
ॐकार से विकार विनाश	४०
ॐकार से उच्चारण की प्रक्रिया	४१
ॐकार में ब्रह्मांड	२९
ॐकार में माधुर्य	४१
काल का अंतराय	४४
गुण के लक्षण	७२
चित्त की शक्ति	३५
चेतनदशा पाने के लिए	७४
चौथा डायमेन्शन	६९
जप शब्द का रहस्य	४२
जागृति किस तरह	२५
'जानने' की युक्ति	४१
तटस्थता-किस तरह	२७
तप-अदीठ	७५
तप की संस्कृति	४३
त्याग किस का	८३
ॐ में त्रिलोक	४५
दंभ से पतन	१९
दुर्घटना से उबरे	३२
दंभ का प्रकार	७८
धर्म के लक्षण	१४
नवसारी का अनुभव	३१
पंचतत्त्वों की लीला	२२
पुरुष का गुणधर्म	७१
पुरुष को प्रगट करने की रीत	७२
बल का प्रदर्शन	४८
बुद्धि का कार्य	७
बुद्धि की विशुद्धि	८
बुद्धि में समत्व	८
बोलना और बरतना	८०
भक्ति का परिणाम	१०
भक्ति का स्वरूप	८७
भगवान के भिन्न रूपों का रहस्य	६४
भगवान के दर्शन	६५
भगवान के दर्शन किस तरह	६५
भगवान की भावना बीजरूप से	२९
भगवान का काम	७९
भगवान का निवासस्थान	६६
भावना-सभी में	२९
भावविकास की प्रक्रिया	६८
भूमिका का मर्म	७
भेद कम करो	५६

भोक्ता फिर भी साक्षी	२६
भ्रम तोड़ो	५३
मातृभूमि का ऋण	८६
मानवदेह में चेतन	७०
मानवदेह में मिथ्याचार	७९
मुलायमता किस लिए	६८
मोटा के साथ मित्रता	५४
मोटा का समाधि-अनुभव	६१
मौनमंदिर के संस्कार	५९
मौनमंदिर का अनोखापन	५४
'योगक्षेम' का सही अर्थ	६०
विनाश का कारण	४७
विनाश का मूल	४७
विरल मित्र : 'मोटा'	८२
वेदकाल की संस्कृति	२३
वैराग्य की आवश्यकता	११
व्यवहार द्वारा प्रयोग	५२
शब्द का उद्भवस्थान	२३,३९
समस्या का हल	३०
संगीत का प्रभाव	३७
संस्कार भूमिका के अनुसार	७२
संस्कार से सावधान	७६
सुख का मार्ग	५६
सुवर्णपात्र का अर्थ	७३
सूक्ष्म चक्रों का विकास	४०
सेवा का प्रथम क्षेत्र	५८
स्मरण कब फलित हो	१८
स्मरण से प्रभु सन्मुख	२०
स्मरण का प्रताप	१२,१३,१५,१७
स्मरण के लिए शर्त	१८, १९
स्वयंस्फुरणा का महत्त्व	८८
श्रद्धा	५२
हृदय-सच्चा	६७
हेतु की जागृति	१४

•

आरती

ॐ शरणचरण लीजिए, प्रभु शरणचरण लीजिए
पतित को उबार लीजिए (२) कर पकड़ हृदय लगा लीजिए...
ॐ शरणचरण.

मन–वाणी के भाव आचरण में उतरें प्रभु (२)
मन, वाणी और दिल को (२) कृपा कर एक करें...ॐ शरणचरण.

सभी स्वजनों के साथ, दिल में सद्भाव जगें, प्रभु (२)
भले अपमान हुए हों (२) तब भी भाव बढ़े...ॐ शरणचरण.

हीन प्रकार की वृत्ति; ऊर्ध्वगमन करने, प्रभु (२)
प्रभुकृपा से मथन करावें (२) चरणशरण पाने...ॐ शरणचरण.

मन के सकल विचार, प्राणयुक्त वृत्ति, प्रभु (२)
बुद्धि की सभी शंकाएँ (२) चरणकमल में द्रवित हो...ॐ शरणचरण.

जैसे भी हो प्रभु, वैसे ही दीखें, प्रभु (२)
मति मेरी खुली रहे (२) स्पष्ट ही परखें...ॐ शरणचरण.

दिल में कुछ भरा हो, उससे सब उलटा, प्रभु (२)
मुझसे कभी न हो (२) ऐसी मति दें...ॐ शरणचरण.

जहाँ जहाँ गुण और भाव, वहाँ दिल मेरा टिके, प्रभु (२)
गुण और भाव की भक्ति (२) मेरे दिल में संचरित करें...ॐ शरणचरण.

मन, मति, प्राण प्रभु । तुम्हारे भाव में तल्लीन रहे, प्रभु (२)
दिल में तेरी भक्ति की (२) लहरे उछलें...ॐ शरणचरण.

– मोटा

हरि:ॐ आश्रम में उपलब्ध हिंदी पुस्तकों का लिस्ट

क्रम	पुस्तक	प्र.आ.
१.	पूज्य श्रीमोटा एक संत	१९९७
२.	कैंसर का प्रतिकार	२००८
३.	सुख का मार्ग	२००८
४.	दुर्लभ मानवदेह	२००९
५.	प्रसादी	२००९
६.	नामस्मरण	२०१०
७.	हरि:ॐ आश्रम (श्रीभगवान के अनुभव का स्थान)	२०१०
८.	श्रीमोटा के साथ वार्तालाप	२०१२
९.	विवाह हो मंगलम्	२०१२
१०.	बालकों के **मोटा**	२०१२
११.	विद्यार्थी **मोटा** का पुरुषार्थ	२०१२
१२.	मौनमंदिर का मर्म	२०१३
१३.	मौनमंदिर का हरिद्वार	२०१३
१४.	मौनएकांत की पगडंडी पर	२०१३
१५.	मौनमंदिर में प्रभु	२०१४

●

English books available at Hariom Ashram Surat.
January - 2020

No.	Book	F. E.
1.	At Thy Lotus Feet	1948
2.	To The Mind	1950
3.	Life's Struggle	1955
4.	The Fragrance Of A Saint	1982
5.	Vision Of Life - Eternal	1990
6.	Bhava	1991
7.	Nimitta	2005
8.	Self-Interest	2005
9.	Inquisitiveness	2006
10.	Shri Mota	2007
11.	Rites and Rituals	2007
12.	Namsmaran	2008
13.	Mota for Children	2008
14.	Against Cancer	2008
15.	Faith	2010
16.	Shri Sadguru	2010
17.	Human To Divine	2010
18.	Prasadi	2011
19.	Grace	2012
20.	I Bow At Thy Lotus Feet	2013
21.	Attachment And Aversion	2015
22.	The Undending Odyssey (My Experience Of Sadguru Sri Mota's Grace)	2019
23.	Pujya Shri Mota Glimpses of a divine life (Picture Book)	2020
24.	Genuine Happiness	2021

●

॥ હરિ:ૐ ॥

॥ हरिःॐ ॥

चित्तशुद्धि की आवश्यकता

इतिहास यह देखता है कि कितनी संस्कृतियाँ आयीं और चली गई, किन्तु मनुष्यजाति सुधरी नहीं । उसने इतिहास में से जाना और अनुभव किया है–पुराणों में असुरों ने शक्ति पायी और नष्ट हुए । क्योंकि उस शक्ति का उपयोग अपने उपभोग के लिए किया । उन लोगों के मन, बुद्धि, चित्त और प्राण की शुद्धि नहीं थी और अहंकार खूब बढ़ाया, फिर भी हम नहीं समझते । इससे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् की शुद्धि करनी चाहिये ।

– **श्रीमोटा**

'मौनमंदिर में प्रभु', प्र. सं., पृ. ५४